उत्तराखण्ड तीर्थ माहात्म्य

चारोंधाम सहित

भाषा टीका ।

संग्रहकर्ता तथा प्रकाशक—

राजमान्य पं० कुलानंद शर्मा स्वयंपाकी
अध्यक्ष "श्रीकेदारकीर्ति" कार्यालय
रविग्राम पो० गुप्तकाशी
ज़ि० गढ़वाल ।

PRINTED BY K. D. SETH
AT THE
NEWUL KISHORE PRESS, LUCKNOW.

1932.

प्रथम बार १००० } रजिस्टरी सब हक़ प्रकाशक के स्वाधीन है । { मूल्य ॥) आना

NEPAL SANSKRIT UNIVERSITY
पुस्तकालय

३.१.७५

भूमिका।

NEPAL SANSKRIT UNIVERSITY पुस्तकालय

"संसारतापतप्तानां भेषजं तीर्थमुत्तमम्"

अहा यह वही पवित्र उत्तराखण्ड बदरिकाश्रम नामक देश है जिसका नाम स्मरण करने से ही मनुष्य के कोटि कोटि पाप दूर होते हैं समस्त संसार में इसका प्रभाव प्रकाशमान हो रहा है इस पुण्यधाम के पंडागण सम्पूर्ण भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्तों में भ्रमण कर श्रद्धालु मनुष्यों से इसका माहात्म्य वर्णन करते हैं। प्रति वर्ष इन पंडागणों के साथ समग्र प्रदेशों के असंख्य यात्रिजन मार्गादिक का कष्ट सहनकर भगवान् श्रीबदरीनाथ श्रीकेदारनाथादिकों के दर्शन के निमित्त आते हैं और इन देवाधिदेवों के स्पर्शन दर्शन के प्रभावसे सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर मनुष्ययोनि के लाभों के भागी होते हैं। हरिद्वार से ही इस पुण्यभूमि भूवैकुंठ केदारखण्ड (उत्तराखंड) का प्रारम्भ होता है इसकी यात्रा में पग पग पर अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। जहाँ जगद्व्यापी परब्रह्म का ध्यान लगाने से शीघ्र दर्शन होता है जहाँ से त्रिभुवनतारिणी पतितपावनी सगरवंशोद्धारिणी भगवती जह्नुकन्या भागीरथी श्रीगंगा का प्रादुर्भाव हुआ है। स्कन्दपुराण के केदारखंड में लिखा है कि यह वही प्रदेश है जहाँ सृष्टि

के आदि में शिवरूप परब्रह्म ने चतुर्मुख ब्रह्मा होकर सृ
का निर्माण किया था अतएव जहाँ तेतीस कोटि देवता वन,
पर्वत, शिला, वृक्ष नदी आदि रूप में गुप्त रूप से निवास
करते हैं। यही जानकर व्यास, वशिष्ठ आदि महर्षियों ने
भी यहाँ निवास कर भागवत आदि अठारह पुराण बनाये।
इसी देश के प्रभाव से युधिष्ठिरादि पांडवगणों की गोत्र-
हत्या तथा ब्रह्महत्या छूटी और इसी देश में सूर्य के पुत्र
वैवस्वत मनु ने दारुण तपस्या की और उद्धवजी को
तपस्या की सिद्धि मिली और धर्म ने दक्ष की पुत्री मूर्ति
देवी से भगवान् के प्रसिद्ध अवतार नर नारायण पैदा किये
मुक्ति चाहनेवाले महात्माओं ने सब काल इस ही केदारखंड
(उत्तराखंड) का आश्रय लिया। धन्य हैं वे श्रद्धालु
धार्मिक सज्जन जो बड़े दूर दूर से आकर इस देश की तीर्थ-
यात्रा करते हैं इस उत्तराखंड में हरिद्वार से लेकर यमुनोत्तरी,
गंगोत्तरी तथा श्रीकेदारनाथ और श्रीबद्रीनाथ धाम की
यात्रा करने में सवा लक्ष पर्वत और चौरासी लक्ष तीर्थों की
यात्रा और तेतीस कोटि देवताओं का दर्शन होता है।

सर्व साधारण जानते ही हैं कि इस समय में सत्ययुग के
समान तपश्चर्या नहीं हो सकती है और न त्रेतायुग के तुल्य
अश्वमेधादि यज्ञों की आशा है और न द्वापर युग के सदृश
ज्ञान की सम्भावना है। इस कलियुग में केवल हरिकीर्तन तीर्थ
सेवन (तीर्थयात्रा) आदि धर्माचरण ही इस असार संसार

३५१०६

से पार होने का उपाय है; क्योंकि प्रायः गृहस्थजन घर में रात दिन पुत्र कलत्रादिक कुटुम्ब वर्ग के पोषण (पालन) के निमित्त मिथ्या भाषणादि असद् व्यवहार में निमग्न होकर अपने उद्धार का स्मरण मात्र भी नहीं करते हैं।

जिस भूमि का ऐसा माहात्म्य है वहाँ की जो एक वार भी आकर तीर्थयात्रा करता है वह अवश्य भुक्ति-मुक्ति भागी हो जाता है अर्थात् धर्म अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थ पाता है, इसमें अणुमात्र भी संशय नहीं। इस कलि-काल में भी जिन पुण्यात्मा सनातनधर्मावलम्बी धार्मिक सज्जनों के हृदय में अपने धर्म की श्रद्धारूप ज्योति जग-मगा रही है और वे जब यथावकाश समय पाकर इस पुण्यधाम उत्तराखण्ड की यात्रा करने के लिये प्रस्थान करते हैं या प्रस्थान करना चाहते हैं, तो उन्हें यहाँ के तीर्थों की महिमा जानने की इच्छा होनी स्वाभाविक है। यद्यपि उत्तराखंड की महिमा को प्रकाश करनेवाले अन्य ग्रन्थ भी छपे हैं, तथापि वे विस्तृत अर्थात् वहुत बड़े हो जाने के कारण सर्वसाधारण के उपयोगी नहीं, यह सोचकर मैंने अपने विचार तथा अन्य कई अपने सज्जन मित्रों की प्रेरणा से इस छोटे से किन्तु सारगर्भित ग्रन्थ को लिखने का साहस किया। मैं आशा करता हूँ कि मेरे इस शुभ परिश्रम से सर्व सज्जन महाशय प्रसन्न होंगे।

मैं पाठकों का ध्यान इस ओर दिलाता हूँ कि यह पुस्तक

एक शुद्ध अति प्राचीन केदारखण्ड की हस्तलिखित पुस्तक के आधार पर बनाई गई है, जिससे इसका गौरव और भी अधिक हो गया है।

इस पुस्तक में उत्तराखण्ड के अतिरिक्त चारों धाम का माहात्म्य व सुचारु रूप से शुद्ध मंत्रों द्वारा प्रत्येक तीर्थों में पितरों के उद्धार के निमित्त स्नान, गंगापूजन-तर्पणादि विधानसहित "सर्वतीर्थ श्राद्धपद्धति" का भी समावेश किया गया है। आशा है, धार्मिक श्रद्धालु पुरुष इस पुस्तक को अपनाकर मेरा उत्साह बढ़ायेंगे जिससे मैं और भी कुछ आप लोगों की सेवा कर सकूँ।

आपका कृपाभिलाषी—

कुलानन्द शर्मा स्वयंपाकी

पुरोहित मंदिर श्रीकेदारनाथ।

अथोत्तराखण्ड

तीर्थ माहात्म्य प्रारम्भः ।

* मंगलाचरणम् *

श्रीगणेशायनमः॥वन्दे श्रीनारसिंहं गरुडसुर-
मुनिक्रोडकेदारगंगां मार्कण्डेयाग्नितीर्थं
द्रविणदभगवत्पाददुर्गागणेशान् ॥ घण्टा-
कर्णोद्धव श्रीनरनगबदरीनाथनारायणाख्यं
ब्रह्मप्रह्लादयोगीश्वरपदकमलश्रीनृसिंहांश्च भ-
क्त्या ॥ १ ॥

केदारखण्ड-प्रमाणम् ।

श्रीगङ्गाद्वारमर्यादं श्वेतान्तं वरवर्णिनि ।
केदारखण्डं विख्यातं भूम्यास्ताद्भिन्नकं स्थलम् ॥
पंचाशद्योजनायामं त्रिंशद्योजनविस्तृतम् ॥१॥

हे पार्वति ! श्रीकेदारखण्ड नामक भारत भूमिका एक सर्वोत्तम प्रदेश जो अन्य साधारण भूमि से भिन्न है । श्रीहरिद्वार से लेकर श्वेत पर्वत तक है जो लम्बाई में २०० कोश और चौड़ाई में १२० कोश है ॥ १ ॥ के० ४० अ० ॥

केदारखण्ड (उत्तराखण्ड) महिमा ।

स्कन्द उवाच ।

गंगाद्वारोत्तरं विप्र स्वर्गभूमिः स्मृता बुधैः ।
अन्यत्र पृथिवी प्रोक्ता गंगाद्वारोत्तरं विना ॥ १ ॥

स्कन्द नारद ऋषि से कहते हैं, हे नारद ! श्री हरिद्वार से ऊपर जो केदारखण्ड की भूमि है वह स्वर्ग भूमि है और उस से भिन्न और भूमि पृथिवी कहलाती है ॥१॥ के० १०६ अ० ॥

इदमेव महाभाग स्वर्गद्वारं स्मृतं बुधैः ।
यस्य दर्शनमात्रेण मुक्तस्स्याद्भवबंधनैः ॥२॥

हे महाभाग ! इसी केदारखण्ड (उत्तराखण्ड) को विद्वान् लोग स्वर्गद्वार कहते हैं, जिसके दर्शन करने से ही मनुष्य संसार-बन्धन से मुक्त हो जाता है ॥ २ ॥

ब्रह्माविष्णुमहेशाद्या देवा नित्यं प्रतिष्ठिताः ।
मुनयः सिद्धगन्धर्वा गुह्यकाप्सरसां गणाः ॥
तिष्ठन्त्यत्रैव भगवच्छेत्तुं संसारबंधनम् ॥ ३ ॥

यहां ब्रह्मा, विष्णु, तथा शङ्कर आदि देवगण सदा निवास

करते हैं इसी प्रकार सम्पूर्ण ऋषि, सिद्ध, गन्धर्व, गुह्यक तथा अप्सरोगण रहा करते हैं, जिनके निवास से यहां के रहनेवाले मनुष्यों का संसार-बन्धन छूटता है ॥ ३ ॥

संसारतापतप्तानां भेषजं तीर्थमुत्तमम् ।
पापानि शतसंख्यानि ब्रह्महत्यासमानि च ॥
कृतान्यपि विनश्यन्ति तीर्थदर्शनकारिणाम् ४ ॥

यह केदारखण्ड नामक (देश के) तीर्थ संसार ताप से संतप्त जनों के संताप मिटाने को परमौषध के तुल्य है ब्रह्महत्या के सदृश उग्र पाप भी तीर्थयात्रा से क्षणमात्र में विनष्ट होते हैं ॥४॥

तत्र ये पर्वताश्चैव दृषदः सरितस्तथा ।
सर्वे पुण्यतमाः ख्याता भुक्तिमुक्तिप्रदायकाः ॥ ५ ॥

यहां के पहाड़, पत्थर तथा नदियाँ सभी अत्यन्त पवित्र हैं और देवरूप होने से भक्तजन यात्रियों को भोग तथा मोक्ष देनेवाले हैं ॥ ५ ॥ के० २०५ अ० ॥

तत्रादौ हरिद्वार-माहात्म्यम् ।

स्कन्द उवाच ।

शृणु नारद वक्ष्यामि लोकानां मुक्तिकारणम् ।
सकृत्स्नानं तु यैर्मर्त्यैर्गङ्गाद्वारे शुभावहे ॥
न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ १ ॥

स्कन्द नारद से कहते हैं, हे नारद ! मैं तुम्हें मनुष्यों की मुक्ति का एक उपाय बताता हूं । जो लोग एकबार भी श्रीहरि-

द्वार में गंगा स्नान करते हैं वे फिर संसार में जन्म नहीं लेते चाहे करोड़ों कल्प बीत जायँ ॥ १ ॥ के० १०१ अ० ॥

यदा भगीरथो राजा सूर्यवंशधरः प्रभुः ।
आनयामास स्वर्गाद्वै गंगां परमपावनाम् ॥२॥
स्वर्गान्निपतिता गंगा पृथिव्यामागता यदा ।
तदेवास्य द्विजश्रेष्ठ गंगाद्वारमिति श्रुतम् ॥३॥

जब सूर्यवंश का राजा भगीरथ उग्र तप करके स्वर्ग से श्री-गंगा को लाया और श्रीगंगा स्वर्ग से उतर कर पृथिवी में आई उसी दिन से इस तीर्थ का नाम गंगाद्वार पड़ा ॥ २ । ३ ॥

धन्यानां पुरुषाणां हि गंगाद्वारस्य दर्शनम् ।
विशेषतस्तु मेषार्कसंक्रमेऽतीवपुण्यदे ॥ ४ ॥

पुण्यात्मा पुरुषों को ही श्रीहरिद्वार के दर्शन होते हैं विशेष कर इस तीर्थ में स्नान दानादि का माहात्म्य मिषसंक्रमण अर्थात् वैशाख की विषुवती संक्रांति में होता है ॥ ४ ॥

तत्रापि कुम्भराशिस्थे वाक्पतौ सुरवन्दिते ।
अयने विषुवे चैव संक्रान्तौ चन्द्रसूर्ययोः ॥
ग्रहणे वा व्यतीपाते पूर्णिमायां महामुने ॥५॥

हे महामुने ! उसमें भी जब कुम्भ राशि पर बृहस्पति हो और मेष राशि पर सूर्य आवैं उत्तरायण, दक्षिणायन, संक्रांति में तथा चंद्र सूर्य ग्रहण में और व्यतीपात पूर्णिमा में ॥ ५ ॥

सोमवारान्वितायां वा यस्यां कस्यामथापि वा ।

अमायां च तथा माघे वैशाखे कार्तिकेऽपि वा ६ ॥

सोमवती अमावास्या में अथवा अन्य अमावास्या में माघ वैशाख तथा कार्तिक मास में इस हरिद्वार तीर्थ का दर्शन तथा स्नान आदि का बड़ा माहात्म्य है ॥ ६ ॥

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशम्यां स्नानमात्रतः ।
प्राप्यते परमं स्थानं दुर्लभं योगिनामपि ॥७॥

ज्येष्ठ के महीने शुक्लपक्ष की दशमी (दशहरा) के दिन केवल स्नान ही करने से परम धाम की प्राप्ति होती है जो योगियों को भी दुर्लभ है ॥ ७ ॥

कुशावर्तं महातीर्थं दक्षिणे ब्रह्मतीर्थतः ।
स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ॥
यदत्र क्रियते कर्म तत्तत्स्यात्कोटिसंख्यकम् ॥८॥

ब्रह्मकुण्ड से दक्षिण की ओर (एक फलांग की दूरी पर) कुशावर्त्त नामक महातीर्थ है जहां स्नान, दान, जप, होम, वेदादिपाठ तथा श्राद्ध तर्पण जो कुछ किया जाता है वह करोड़ों गुणा अधिक होता है ॥ ८ ॥

गंगाद्वारे कुशावर्ते बिल्वके नीलपर्वते ।
स्नात्वा कनखले तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते ॥९॥

हरिद्वार, कुशावर्त, बिल्वक, नीलपर्वत, तथा कनखल तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य को फिर जन्म नहीं लेना पड़ता ॥९॥

अथ हृषीकेश-माहात्म्यम् ।

दृष्ट्वा श्रीशरणं देवं याति वै भक्तितत्परः ।

मुक्तिभागी भवेत्सद्यो नरनाथो भवत्यपि ॥ १० ॥

जो यात्री हृषीकेश में श्रीभगवान् विष्णु भरत के दर्शन भक्तियुक्त होकर करता है वह शीघ्र मुक्ति पाने का अधिकारी होता है और इस लोक में राजसुख प्राप्त करता है ॥ १० ॥ के० १०२ अ० ॥

द्वापरे वामनं देवं कलौ भरतमेव च ।

नमस्यन्ति महाभाग भवेयुर्मुक्तिभागिनः ॥ ११ ॥

हे महाभाग ! द्वापरयुग में वामन को, कलियुग में भरत को जो लोग प्रणाम करेंगे वे मुक्तिभागी होंगे ॥ ११ ॥

तपोवनं समासाद्य कुर्वन्ति श्राद्धमुत्तमम् ।

तेषां वै पितरः स्वर्गे नित्यं तृप्ता भवन्ति हि ॥ १२ ॥

जो यात्री तपोवन में आकर भलीभांति (विधिपूर्वक) श्राद्ध करते हैं उनके पितर स्वर्ग को प्राप्त होकर वहां सदा उनके दिये हुए तर्पण पिण्ड से तृप्त रहते हैं ॥ १२ ॥

लक्ष्मणस्थानमासाद्य लक्ष्मणं प्रणमंति ये ।

ते वै रघुवरश्रेष्ठा भाग्यवन्तो भवन्ति हि ॥

सौमित्रितीर्थके स्नात्वा वाजपेयफलं लभेत् १३ ॥

जो यात्री लक्ष्मण-झूला में (जो कि श्रीलक्ष्मणजी का स्थान है) आकर श्रीलक्ष्मणजी को प्रणाम करते हैं वे श्रीरामचंद्रजी के प्यारे होकर भाग्यवान् होते हैं और वहाँ स्नान करने से वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ के० १०२ अ० ॥

इति मायापुरी-माहात्म्यम् ॥

अथ देवप्रयाग-माहात्म्यप्रारंभः

हरिद्वार से ५८ मील है

स्कन्द उवाच ।

गंगाद्वारात्पूर्वभागे श्रीगंगाऽलकनन्दयोः ।
संगमो यत्र देशे तु देवप्रयागसंज्ञकः ॥
वदन्ति मुनयः सर्वे हरिभक्तिपरायणाः ॥ १ ॥

स्कन्दजी कहते हैं, हे नारद ! हरिद्वार से पूर्वभाग में जहाँ श्रीगंगा (भागीरथी) जी और अलकनन्दा का संगम हुआ है, हरिभक्तिपरायण सब मुनि इसी को देवप्रयाग कहते हैं ॥ १ ॥ के० १४६ अ० ॥

यस्य दर्शनमात्रेण स्मरणादपि नारद ।
पातकानि प्रणश्यन्ति ब्रह्महत्यासमानि वै ॥
सूर्योदयादंधकारं यथाग्नेस्तूलराशयः ॥ २ ॥

जिसके दर्शन करने से अथवा स्मरण ही करने से ब्रह्महत्या सदृश पाप ऐसे नष्ट होते हैं जैसे सूर्योदय से अन्धकार और अग्नि से रुई के ढेर ॥ २ ॥

अन्यक्षेत्रकृतं पापं अस्मिन्क्षेत्रे विलीयते ।
अस्मिन्क्षेत्रे कृतं पापं वज्रलेपाय जायते ॥ ३ ॥

और अन्य तीर्थों में किया हुआ पाप इस तीर्थ में नष्ट होता है किंतु इस तीर्थ में किया हुआ पाप वज्रलेप के तुल्य अमिट हो जाता है ॥ ३ ॥

अमुं तीर्थं सकृद् दृष्ट्वा नरो याति परां गतिम् ।
अत्र दत्तं तपस्तप्तं सर्वं भवति चाक्षयम् ॥ ४ ॥

इस देवप्रयाग नामक तीर्थ के एक बार भी दर्शन करके मनुष्य वैकुण्ठ लोक को प्राप्त होता है और यहां दान तथा तप किया हुआ सब अक्षय होता है ॥ ४ ॥

यैः कृतं पिण्डदानं हि तीर्थे देवप्रयागके ।
पितृकार्यं मुनिश्रेष्ठ कर्त्तव्यं नहि विद्यते ॥ ५ ॥

जो यहां पिण्डदान करते हैं, हे मुनिवर ! उन्हें फिर पितरों के उद्धार के लिये और कुछ करना बाक़ी नहीं रहता है ॥ ५ ॥

यत्र नित्यं दाशरथिर्वसते सीतया सह ।
लक्ष्मणेन सह भ्राता भरतेन हनूमता ॥ ६ ॥

यहां श्रीभगवान् रामचन्द्र, सीता, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, तथा हनुमान् के सहित रहते हैं ॥ ६ ॥

अस्मिन्क्षेत्रे तु ये मर्त्या विष्णुपूजनकारकाः ।
संगमे स्नानकर्त्तारस्तेपि यान्तु परां गतिम् ॥ ७ ॥

इस तीर्थ में जो मनुष्य श्रीभगवान् रघुनाथजी का पूजन करते हैं और मन्दाकिनी सहित अलकनन्दा तथा भागीरथी के संगम में स्नान करते हैं वे निःसन्देह वैकुण्ठ को प्राप्त होते हैं ॥७॥

अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि स्नानमात्रेण नारद।
शुद्धयन्ति पापिनः सर्वे हन्तारोऽपि तपस्विनाम् ८

ब्रह्महत्या करनेवाले पापी भी जान बूझकर अथवा भूल से भी यदि इस देवप्रयाग तीर्थ में स्नान करते हैं तो वे पापमुक्त हो जाते हैं ॥ ८ ॥

अथ यमुनोत्तरी-माहात्म्यम्

देवप्रयाग से १०० मील है

स्कन्द उवाच

यमुनास्नानमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः।
येनैकवारमपि वै कृतं स्नानमिह द्विज ॥
यमलोकं न गच्छेत्स पश्येच्च परमं पदम् ॥१॥

स्कंदजी बोले, हे नारद! यमुनाजी में केवल स्नान ही करने से मनुष्य कृतार्थ हो जाता है। जो एक बार भी इसमें स्नान करता है वह यमलोक के दर्शन नहीं करता है और वैकुण्ठ को प्राप्त होता है ॥ १ ॥ के० १३१ अ० ॥

गंगा च यमुना चैव समे त्रैलोक्यपावने।
ययोर्दर्शनमात्रेण शिवतां याति मानवः ॥२॥

गंगा और यमुना दोनों ही तीनों लोकों को पवित्र करने में समान हैं, जिनके दर्शन से ही मनुष्य शिवलोक को प्राप्त होता है ॥ २ ॥

यमुनास्नानमात्रेण यमपाशैर्न बध्यते ।
त्रिरात्रोपोषितो यत्र सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३॥

श्रीयमुनोत्तरीजी में स्नान करने से मनुष्य यम के पाशों से नहीं बांधा जाता है और वहाँ तीन रात्रि तक जो यात्री उपवास (निराहार व्रत) करता है वह सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है ॥ ३ ॥

यत्र वह्निः पुरा विप्र तपस्तेपे सुदारुणम् ।
अत्रैव तपसा प्राप्तं दिगीशत्वं तदाग्निना ॥४॥
दिव्यं सरश्च तत्रास्ति तप्तोदं पापिदुर्गमम् ।
तत्र वै स्नानमात्रेण लभते परमं पदम् ॥ ५ ॥

हे नारद ! जहां पहले अग्नि ने बड़ी कठिन तपस्या की थी और यहां ही अपने कठिन तप के प्रभाव से अग्नि ने दिक्पाल पद प्राप्त किया था और वहां तप्तकुण्ड नामक सरोवर है जो पापियों को पाना दुर्लभ है, वहां स्नान करने से ही मनुष्य स्वर्ग लोक को पाता है ॥ ४।५ ॥ के० २०४ अ० ॥

उमाकुण्डमिति ख्यातं गौरीकुण्डात्तथोत्तरे ।
अतितप्तं जलं तत्र महापातकनाशनम् ॥ ६ ॥

गौरीकुण्ड नामक तप्तकुण्ड से उत्तर की ओर उमाकुण्ड नामक एक और तप्तकुण्ड है, जहां अत्यन्त गरम जल है, जिस

के स्पर्श से महापापों का नाश होता है "इसी गर्म कुण्ड में कपड़े पर चांवल बांध कर डालने से भात होजाता है, इसीको गोरखडिब्बी भी कहते हैं" ॥ ६ ॥

सिद्धतीर्थमिति ख्यातं तत्र सिद्धिप्रदायकम् ।
यमेन तत्र विप्रेश तपस्तप्त्वेशतां गता ॥७॥

हे द्विजराज ! वहां सिद्धतीर्थ नामक एक तीर्थ है जो सिद्धियों का देनेवाला है । यम ने वहां ही तप करके लोकपाल-पदवी पाई ॥ ७ ॥

शतजन्मार्जितैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ।
यस्य भाग्यवशान्मृत्युर्यमुनायास्तटे भवेत् ॥
स लभेद् ब्रह्मसायुज्यं न स भूयोऽभिजायते ॥८॥

श्री यमुनोत्तरी में स्नान करनेवाला सैकड़ों जन्मों के किये हुए पापों से मुक्त होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं जिसका भाग्य से यमुना के तट पर मृत्यु हो वह परब्रह्म में सायुज्यमुक्ति को पाता है और फिर कभी भी संसार में जन्म नहीं लेता ॥८॥

प्रसंगाद्वा बलात्काराद्भक्त्याऽभक्त्यापि मानवः ।
यो गच्छेद्यमुनां धीरो नास्ति तत्सदृशो भुवि ९ ॥

किसी कारणवश अथवा दूसरे की प्रेरणा से भक्ति से अथवा विना भक्ति से जो मनुष्य श्री यमुनोत्तरी की यात्रा को चला जावे, हे नारद ! उसके समान संसार में कोई भी मनुष्य नहीं ॥ ६ ॥

तावद्गर्जंति पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ।

यावन्न जायते स्नानं यमुनायां महामते ॥ १० ॥

हे महामते ! ब्रह्महत्यादिक महापाप तभी तक गरजते हैं जब तक मनुष्य यमुना में स्नान नहीं करता है ॥ १० ॥

तावद्यमः प्रभवति श्रेष्ठः पापाद्धि शासितुम् ।
यावच्च सूर्यजास्नानं न करोति महामते ॥ ११ ॥

पापों का दण्ड देने के लिये यमराज तभी तक समर्थ है, जब तक मनुष्य यमुना में स्नान नहीं करता ॥ ११ ॥

यदि भाग्येन लभते सूर्यग्रहणपूर्वकम् ।
कुरुक्षेत्राभिधात्काश्याः फलं कोटिगुणं लभेत् १२

यदि सौभाग्यवश सूर्यग्रहण के समय श्रीयमुनोत्तरी में यात्री चला जावे तो उसे काशी और कुरुक्षेत्र से करोड़ गुणा अधिक फल मिलता है ॥ १२ ॥

त्रुटिमात्रमपि स्वर्णं ददाति द्विजमूर्तये ।
स याति परमाल्लोकान्दरिद्रो न भवेत्पुनः ॥ १३ ॥

कण से भी अल्प सुवर्ण यदि यमुना के तटपर पण्डा ब्राह्मण को दान करके देवे तो वह वैकुण्ठादि लोक को प्राप्त होवे और जबतक इस लोक में जीवे तबतक ऐश्वर्य युक्त होकर रहे ॥ १३ ॥

पितृवंश्याश्च ये केचिन्मातृवंश्यास्तथापरे ।
गुरुश्वशुरबन्धूनां तथा वंश्या महामुने ॥
प्रयान्ति परमं स्थानं प्राप्य पिंडोदकेऽत्र वै ॥ १४ ॥

हे महामुने ! यहां पिण्डदान करने से पिता, माता, गुरु, श्वशुर और बान्धवों के वंशज परम पद को प्राप्त होते हैं॥ १४॥

यमुनास्नानमाहात्म्यं वक्तुं केनापि शक्यते ।
नाहं वर्षशतैर्वक्तुं शक्नोमि मुनिवन्दित ॥१५॥

यमुना के स्नान का माहात्म्य का वर्णन किसी से नहीं हो सकता। हे नारद ! सैकड़ों वर्षों तक मैं भी वर्णन नहीं कर सकता ॥ १५ ॥

यत्र कुत्रापि संदृष्टा यस्मिन्कस्मिन्नपि क्षणे ।
स्नातावगाहिता पीता दृष्टा पापप्रणाशिनी १६

श्रीयमुनोत्तरीजी के चाहे जैसे स्थान में तथा समय में दर्शन, स्नान, जलपान करने से पापों का नाश होजाता है॥१६॥

इति ते कथितं दिव्यं यमुनावैभवं वरम् ।
यस्य स्मरणमात्रेण यमुनास्नानजं फलम् ॥
लभते सुतरां विप्र मृतो ब्रह्मपुरे वसेत् ॥ १७॥

हे विप्र ! यमुनोत्तरीजी की हमने यह शुभकथा तुम्हारे प्रति वर्णन की है। इस तीर्थ की याद करने से ही स्नान के फल की प्राप्ति होती है और प्राणान्त होने पर ब्रह्मलोक में वास मिलता है ॥ १७ ॥

इति श्रीकेदारखण्डान्तर्गत यमुनोत्तरी-माहात्म्यम् ॥

उत्तरकाशी-माहात्म्यम् ।

देवप्रयाग से ७४ मील है

स्कन्द उवाच ।

शृणु नारद वृत्तान्तं पापघ्नं सर्वकामदम् ।
यथोत्तरस्थिता काशी जातेयं मुक्तिदा नृणाम् ॥ १ ॥

स्कन्दजी कहते हैं, हे नारद ! मैं तुम्हें उत्तराखण्ड में स्थित उत्तरकाशी नामक तीर्थ का पापनाशक तथा मनोरथ देनेवाला माहात्म्य सुनाता हूं, जिस प्रकार यह उत्तरकाशी (बाड़ाहाट) मुक्तिदायिनी हुई है ॥ १ ॥ के० ६३ अ० ॥

वक्ष्ये तद्विस्तरेणाहं यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ।
शप्तां श्रुत्वा पुरा काशीं सर्वदेवाः सवासवाः ॥ २ ॥
कलावंतर्हिता काशी भविष्यंति इति स्फुटम् ।
मुनयश्च महाभागाः संत्रस्ता मुक्तिलालसाः ३
उमेशं शरणं जग्मुर्हिमवन्तं नगेश्वरम् ।
शतयोजनविस्तीर्णा सभा यत्र विराजते ॥ ४ ॥

उत्तरकाशी की महिमा जिसके सुनने से मोक्ष प्राप्त होता है, मैं तुम्हें विस्तार से सुनाऊँगा । कलियुग में काशी अन्तर्धान हो जायगी ऐसा काशी पर शाप लगा सुनकर इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता तथा ऋषि महर्षि मुमुक्षु पुरुष काशी की अन्तर्धान की बात से घबराये हुए हिमालय पर्वत पर जहां

सौ योजन (चार सौ कोश) चौड़ी शंकर की सभा है वहां श्रीशंकर की शरण गये ॥ २-४ ॥

तत्र गत्वा महेशानं दृष्ट्वा देवमुमापतिम् ।
तुष्टुवुर्वाग्भिरग्र्याभिः सर्वभूतविमुक्तये ॥ ५ ॥

वहां जाकर और भगवान् शंकर का दर्शन पाकर संसारी जनों के कल्याण के लिये उत्तम वाणी से स्तुति करने लगे ॥ ५ ॥

ऋषय ऊचुः ।

शम्भवे विभवे तुभ्यं व्यापकाय परात्मने ।
भव्याय भव्यरूपाय विरूपाय निरात्मने ॥ ६ ॥

सर्वशक्तिमान्, व्यापक, पुरुषोत्तम, कल्याणस्वरूप, कल्याणप्रद, अनन्तरूप तथा निराकार श्रीभगवान् शंकर को हम सब प्रणाम करते हैं ॥ ६ ॥

स्कन्द उवाच ।

इति तेषां स्तुतिं श्रुत्वा दिव्यां वै वेदसंमिताम् ।
प्रोवाच सन्तुष्टमनाः सर्वानृषिगणांश्शिवः ॥ ७ ॥

स्कन्दजी ने कहा, इस प्रकार देवता तथा ऋषियों की वेदार्थपूर्ण वाणी सुनकर शिव प्रसन्न होकर सम्पूर्ण ऋषि तथा देवताओं से कहने लगे ॥ ७ ॥

ईश्वर उवाच ।

भो तापसाः किं युष्माकमभीष्टं वदत द्रुतम् ।
किमर्थमागता ह्यत्र मां स्तोतुं भक्तितत्पराः ॥ ८ ॥

शिवजी बोले, ऐ देवता तथा ऋषियो ! जिस मनोरथ से तुम मेरी स्तुति करने के लिये भक्तिपूर्वक यहां आये हो वह अपना मनोरथ शीघ्र कहो ॥ ८ ॥

ऋषय ऊचुः ।

भगवन् सर्वभूतेश कृतार्थाः स्मो वयं किल ।
यैर्भवान् दृष्टिमार्गं हि प्रापितो भक्तवत्सलः ॥ ९ ॥

ऋषियों ने कहा, हे सम्पूर्ण प्राणियों के स्वामी ! हमारे सकल मनोरथ सिद्ध हो गये, जो हमने भक्तवत्सल आपके दर्शन पा लिये ॥ ९ ॥

कलावंतर्हिता काशी इति शप्ता किलाधुना ।
तद्वेदश्रवणात्प्राप्तपीडा ह्यत्र समागता ॥ १० ॥

किन्तु हे प्रभो ! जो आपने काशी को ऐसा शाप दिया कि वह कलियुग में अन्तर्धान होगी ऐसा शाप वचन सुन करके वह दुःखी होकर हमारे ही साथ आई है ॥ १० ॥

कलौ पापसमाविष्टे सर्वधर्मविवर्जिते ।
कथं काशीं विना देव गतिर्नॄणां भविष्यति ११ ॥

हे देव, कलियुग में धर्म तो कोई है नहीं पाप ही पाप हो रहे हैं तो फिर काशी के विना मनुष्यों की मुक्ति कैसे होगी ॥ ११ ॥

ईश्वर उवाच ।

यदा पापस्य बाहुल्यं यवनाक्रांतभूतलम् ।
भविष्यति तदा विप्रा निवासं हिमवद्गिरौ १२ ॥

शिवजी बोले—जब यवन सम्पूर्ण भूमि को आक्रमण कर लेंगे और पापों की अधिकता होगी, तब हे विप्रो ! हमारा हिमालय पर्वत के ऊपर निवास होगा ॥ १२ ॥

केदारमंडले ह्यत्र साकल्येन स्थितिर्मम ।
अस्यास्तु दर्शनादेव मुक्तो भवति मानुषः ॥ १३ ॥

किन्तु केदारमंडल (केदारखण्ड) में मेरी स्थिति रहती है इसलिये उस (केदारखण्ड तीर्थों) के दर्शन करने ही से मनुष्य मुक्त हो जाता है ॥ १३ ॥

यदि स्यात्पुण्यवशातो मृतिरत्र तु कस्यचित् ।
कृमिकीटपतंगादेः सोऽपि मुक्तो न संशयः ॥ १४ ॥

पुण्यवशात् यदि इस स्थान में किसी मनुष्य की मृत्यु हो जाय तो वह चाहे कृमि कीट पतंग आदि ही क्यों न हो तथापि उसकी निःसन्देह मुक्ति हो जाती है ॥ १४ ॥

यथा काशी तथा ह्येषा मत्पुरी भेदवर्जिता ।
यः कश्चिद्भेदकृल्लोके स याति नरकं ध्रुवम् ॥ १५ ॥

जैसे काशी है ऐसे ही यह (उत्तरकाशी) भी हमारी पुरी है इसमें कोई भेद नहीं है । जो मनुष्य संसार के बीच इन दोनों में भेद समझता है वह निश्चय ही नरकगामी होता है ॥ १५ ॥

इयमेव कलौ म्लेच्छजनसंकुलके ध्रुवम् ।
काशीतिख्यातिंयात्येवनान्यथाममभाषितम् १६

हे विप्रो ! म्लेच्छों के द्वारा संकुल हुए कलियुग में यही

(उत्तरकाशी) पुरी काशी के नाम से प्रसिद्ध होगी। हमारा कहना झूठा नहीं हो सकता है ॥ १६ ॥

वरणा च नदी चासीत्तयोर्मध्ये वराणसी।
अत्र स्नानं जपो होमो मरणं हरपूजनम्।
श्राद्धं दानं निवासश्च यज्ञः स्याद्भुक्तिमुक्तिदम् १७

वरणा और अस्सी नदियों के बीच में वाराणसी (उत्तर-काशी) पुरी है इसमें स्नान, जप, होम, मरण, और विश्वनाथ शिवलिंग का पूजन करना तथा श्राद्ध, दान, निवास, यज्ञ ये सभी भोग और मोक्ष देते हैं ॥ १७ ॥

मणिकर्णिकायां स्नात्वा यः पितॄन्संतर्पयते जलैः।
पितरस्तस्य तृप्ताः स्युर्यावत्कल्पशतं शतम् १८

जो मनुष्य उत्तरकाशी मणिकर्णिका घाट में स्नान कर जल से पितरों का तर्पण करता है, उसके पितर सैकड़ों कल्प पर्यन्त तृप्त रहते हैं ॥ १८ ॥

पंचक्रोशात्मकं क्षेत्रं पूर्वपश्चिमतस्तथा।
दक्षिणोत्तरतश्चैव मृतो मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ १६ ॥

यह क्षेत्र चारों ओर से पंचक्रोशात्मक अर्थात् पाँच कोस का है, इसमें प्राणान्त होने से भी मुक्ति का लाभ होता है ॥ १८ ॥

निक्षिप्ता यत्र पूर्वं हि संगरे देवताऽसुरैः।
अद्यापि दृश्यते तत्र शक्तिर्धातुमयी शुभा ॥ २० ॥

यहाँ जब दैत्य और देवतों का संग्राम हुआ था तब उन्होंने

शाक्त फेंकी थी, वह धातुमयी शुभ शक्ति (वाड़ाशक्ति) अभी तक दृष्टिगत होती है ॥ २० ॥

अस्मिन्क्षेत्रे विलीयन्ते पापान्यन्यत्र मानवैः ॥
कृतानि स्पर्शमात्रेण महान्त्यपि च सुव्रताः॥२१॥

हे द्विजो ! अन्य स्थानों में जो पाप किये गये हैं वे सब इस स्थान में आने से स्पर्श से नाश हो जाते हैं, चाहे वे महापातकी भी क्यों न हों ॥ २१ ॥

यं यं प्रार्थयते कामं तं तं प्राप्नोति मानवः २२

और मनुष्य जिस जिस वस्तु की कामना करता है उसको उसी वस्तु की प्राप्ति होती है ॥ २२ ॥

स्कन्द उवाच ।

इत्युक्त्वा विससर्जाथ सर्वानृषिगणान्मुदा ।
समाययौ स्वभवने वारणावतसंज्ञके ॥ २३ ॥

स्कन्द बोले-हे नारद ! इतना कहकर शिवजी ने सब ऋषियों को विदा किया और उसके आप वारणावत अर्थात् उत्तरकाशी नामक अपने स्थान को चले आये ॥ २३ ॥

ततः प्रभृति देवोऽसौ तत्रैव वसति ध्रुवम् ।
तस्मात्कलियुगे प्राप्ते मुक्तिस्तत्रैव प्राणिनाम्॥२४।

तब से श्रीसदाशिवजी काशी विश्वनाथ वहीं उत्तरकाशी नामक स्थान में रहते हैं। इस कारण कलियुग में जो यहाँ निवास कर अपना शरीर विसर्जित करते हैं वे संसार-बन्धन से मुक्त हो जाते हैं ॥२४॥ इति केदारखण्डे उत्तरकाशी-माहात्म्यम्॥

देवप्रयाग से गङ्गोत्तरी १३० मील है।

अथ गङ्गोत्तरी-माहात्म्यप्रारम्भः

नारद उवाच

श्रुतं पृथिव्युपाख्यानमतीवसुमनोहरम् ।
गङ्गोपाख्यानमधुना वद वेदविदांवर ॥ १ ॥

नारद ने कहा हे नारायण ! अत्यन्त मनोहर पृथ्वी का उपाख्यान सुना अब गंगा का उपाख्यान सुनने की इच्छा है ॥ १ ॥

श्रीनारायण उवाच

राजराजेश्वरः श्रीमान्सगरः सूर्यवंशजः ।
तस्य भार्ये च वैदर्भी शैव्या च द्वे मनोहरे ॥२॥

श्रीनारायण बोले हे नारद ! पूर्वकाल के समय सूर्यवंश में सगर नामक श्रीमान् एक राजराजेश्वर ने जन्म लिया था उनकी परम रूपवती दो स्त्री थीं उनमें एक का नाम वैदर्भी और दूसरी का नाम शैव्या था ॥ २ ॥

तत्पत्न्यामेकपुत्रश्च बभूव सुमनोहरः ।
असमंज इति ख्यातः शैव्यायां कुलवर्धनः ॥३॥

शैव्या के गर्भ से नरपति के वंशधर अतिरूपवान् एक पुत्र ने जन्म ग्रहण किया। इस पुत्र का नाम असमञ्ज था ॥३॥

अन्या चाऽऽराधयामास शंकरं पुत्रकामुकी ।

बभूव गर्भस्तस्याश्च हरस्य च वरेण हि ॥ ४ ॥

और दूसरी रानी वैदर्भी पुत्र की इच्छा से श्रीशंकर की आराधना करने लगी। शंकर के प्रसन्न होकर वर देने से वैदर्भी भी गर्भवती हुई ॥ ४ ॥

गते शताब्दे पूर्णे च मांसपिण्ड सुषाव सा ।
तं दृष्ट्वा सा शिवं ध्यात्वा रुरोदोच्चैः पुनःपुनः ॥५॥

अनन्तर शतवर्ष गर्भ धारण के पीछे उसने एक मास का पिण्ड प्रसव किया, यह देखकर राजपत्नी अत्यन्त दुःखित मन से महादेव की शरणागत हो उच्च स्वर से वारंवार रोदन करने लगी ॥ ५ ॥

शंभुर्ब्राह्मणरूपेण तत्समीपं जगाम ह ।
चकार संविभज्यैतत्पिण्डं षष्टिसहस्रधा ॥ ६ ॥

तब शंकर ने ब्राह्मण के वेष में वहाँ आकर उस मांस-पिण्ड को सहस्र खंड में विभक्त किया ॥ ६ ॥

सर्वे बभूवुः पुत्राश्च महाबलपराक्रमाः ।
ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभामुष्टकलेवराः ॥ ७ ॥

वह सहस्र खण्ड महाबल पराक्रांत पुत्र रूप में परिणत हुए अधिक क्या ? उन कुमारों के शरीर की प्रभा ग्रीष्म काल के मध्याह्न सूर्य की प्रभा से भी अधिक उज्ज्वल थी ॥ ७ ॥

कपिलस्य मुनेः शापाद्बभूवुर्भस्मसाच्च ते।
राजा रुरोद तच्छ्रुत्वा जगाम गहने वने॥ ८॥

किन्तु सम्पूर्ण कुमारों के कपिल मुनि के शाप से भस्म होने पर राजा ने अत्यन्त रुदन करते करते घोर वन में प्रवेश किया॥ ८॥

तपश्चकाराऽसमंजो गंगानयनकारणात्।
लक्षवर्षं तपस्तप्त्वा ममार कालयोगतः॥ ९॥

इधर असमंजस गंगा को लाने के लिये घोर तपस्या करने लगे। क्रमानुसार लाख वर्ष बीतने पर उन्होंने काल के वशीभूत होकर देह त्याग दिया॥ ९॥

अंशुमांस्तस्य तनयो गंगानयनकारणात्।
तपः कृत्वा लक्षवर्षं ममार कालयोगतः॥ १०॥

फिर उनके पुत्र अंशुमान् गंगा को लाने के लिये लक्षवर्ष पर्यन्त कठोर तपस्या करके कालकवल में पतित हुए॥ १०॥

भगीरथस्तस्य पुत्रो महाभागवतः सुधीः।
वैष्णवो विष्णुभक्तश्च गुणवानजरामरः॥ ११॥

इसके उपरान्त अंशुमान् के पुत्र भगवद्भक्त परम वैष्णव अजर अमर अशेष गुणों की खान बुद्धिमान भगीरथ ने॥ ११॥

नोट १—सगर के यज्ञ करने पर इन्द्र ने घोड़ा हरणकर कपिलजी के समीप जा रक्खा। यह राजकुमार उसको खोजने गए और वहाँ पाया। कपिलजी को दुर्वचन कहने से उनके कोपानल में भस्म हुए। असमंजस की प्रार्थना से गंगा से उद्धार होगा यह मुनि ने कहा। ना० पु०।

तपः कृत्वा लक्षवर्षं गंगानयनकारणात् ।
ददर्श कृष्णं ग्रीष्मस्थसूर्यकोटिसमप्रभम् ॥१२॥

गङ्गा को लाने के लिये एक लक्ष वर्षपर्यन्त तपस्या की, अन्त में करोड़ ग्रीष्म के सूर्य के समान प्रभायुक्त श्रीकृष्ण ने उनको दर्शन दिया ॥ १२ ॥

द्विभुजं मुरलीहस्तं किशोरं गोपवेषिणम् ।
कृत्वा च स्तवनं दिव्यं पुलकांकितविग्रहः॥१३॥

उन किशोरमूर्त्ति गोपवेशधारी द्विभुज श्रीकृष्ण के हाथ में मुरली विराजमान थी, अनन्तर उन्होंने स्वच्छन्दता से अपने वंश का तारनेवाला अभिमत वर लाभ किया ॥१३॥

श्रीभगवानुवाच ।

भारतं भारतीशापाद्ग गच्छ शीघ्रं सुरेश्वरि ।
सगरस्य सुतान्सर्वान्पूतान्कुरु ममाऽऽज्ञया १४

तब भगवान श्रीकृष्ण ने गंगा से कहा—हे सुरेश्वरि ! सरस्वती के शाप से तुम शीघ्र भारत में अवतीर्ण होओ। मेरे कहने के अनुसार तुम शीघ्र जाकर सगर-सन्तान का उद्धार करो ॥ १४ ॥

कोटिजन्मार्जितं पापं भारते यत्कृतं नृभिः ।
गंगाया वातस्पर्शेन नश्यन्तीति श्रुतौ श्रुतम्
स्पर्शनाद्दर्शनाद्देव्याः पुण्यं दशगुणं ततः १५

हे नारद ! मनुष्यों का करोड़ों जन्मों का किया हुआ पाप भारतवर्ष में श्रीगङ्गाजी की हवा के स्पर्श से ही नष्ट हो जाता है। ऐसा वेद में सुना गया है। दर्शन से जितना पुण्य होता है, उससे दशगुण श्रीगङ्गाजी के स्पर्श करने से होता है ॥ १५ ॥

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति मौसलस्नानतो नृणाम् ॥

और किये हुए पाप ब्रह्महत्या आदि महापापों के तुल्य भी हों तो भी उन सबका नाश केवल श्रीगङ्गाजी में मौसल स्नान से अर्थात् विना ही मंत्र तथा संकल्प के केवल गोता लगाने से ही हो जाता है ॥ १६ ॥

पुण्यं दशगुणं चैव मौसलस्नानतः परम् ।
ततस्त्रिंशद्गुणं पुण्यं रविसंक्रमणे दिने ॥ १७ ॥

साधारण नित्य गंगा-स्नान से जो फल लाभ होता है संकल्पपूर्वक गंगास्नान करने से उसकी अपेक्षा दशगुण पुण्यलाभ होता है और यदि सूर्य की संक्रांति के दिन गंगा स्नान किया जाय तो उसकी अपेक्षा तीस गुणा पुण्य बढ़ता है ॥ १७ ॥

अमायां चाऽपि तत्तुल्यं द्विगुणं दक्षिणायने ।
ततो दशगुणं पुण्यं नराणामुत्तरायणे ॥ १८ ॥

अमावास्या के दिन में गंगा स्नान करने से संक्रान्ति के तुल्य पुण्य होता है किन्तु दक्षिणायन में स्नान करने से संक्रांति से द्विगुण पुण्य लाभ होता है और उत्तरायण में स्नान करने से संक्रांति से दश गुण पुण्य संचय होता है ॥ १८ ॥

चातुर्मास्यां पौर्णमास्यामनन्तं पुण्यमेव च ।
अक्षयायां च तत्तुल्यं चैतद्वेदे निरूपितम् ॥१६॥

चातुर्मास्य, पूर्णिमा, अक्षय नवमी वा तृतीया में गंगास्नान करने से जितना पुण्य लाभ होता है उसकी सीमा नहीं है ॥१६॥

मन्वन्तराद्यायां तिथौ युगाद्यायां तथैव च ।
माघस्य सितसप्तम्यां भीष्माष्टम्यां तथैव च २०
अथाप्यशोकाष्टम्यां च नवम्यां च तथा हरेः ।
ततोऽपि द्विगुणं पुण्यं नन्दायां तव दुर्लभम् २१

मन्वन्तरा तिथि, युगाद्या माघ मास की शुक्ला सप्तमी, भीष्माष्टमी, अशोकाष्टमी और श्रीरामनवमी के दिन गंगास्नान करने से महापुण्य लाभ होता है और नन्दा स्नान से उसकी अपेक्षा दूना पुण्य संचय होता है ॥ २० । २१ ॥

दशहरा दशम्यां तु युगाद्यादिसमं फलम् ।
नन्दासमं च वारुण्यां महत्पूर्वे चतुर्गुणम् ॥२२॥

दशहरा दशमी में स्नान करने से युगाद्या स्नान के तुल्य फल होता है और यदि महानन्दा अथवा महावारुणी में गंगा स्नान किया जाय तो पूर्व की अपेक्षा चतुर्गुणा पुण्य लाभ होता है ॥ २२ ॥

ततश्चतुर्गुणं पुण्यं द्विमहत्पूर्वके सति ।
पुण्यं कोटिगुणं चैव सामान्यस्नानतोऽपियत् २३

महावारुणी में स्नान करने से साधारण गंगास्नान की अपेक्षा करोड़ गुण पुण्य लाभ होता है ॥ २३ ॥

चन्द्रोपरागसमये सूर्ये दशगुणं ततः ।
पुण्यमर्धोदये काले ततः शतगुणं फलम् ॥ २४ ॥

चन्द्रग्रहण के समय में स्नान की अपेक्षा सूर्य ग्रहण में स्नान करने से उसकी अपेक्षा दशगुण पुण्य लाभ होता है किन्तु अर्द्धोदय योग में स्नान करने से उसकी अपेक्षा सौ गुण पुण्य लाभ होता है ॥ २४ ॥

इत्येवमुक्त्वा देवेशो विरराम तयोः पुरः ।
तमुवाच ततो गंगाभक्तिनम्रात्मकंधरा ॥ २५ ॥

हे नारद ! जब देवेश हरि गंगा और भगीरथ के सन्मुख इस प्रकार कहकर मौन हुए तब देवी गंगा ने भक्तिपूर्वक कन्धे झुकाकर उनसे कहा ॥ २५ ॥

गंगोवाच ।

यामि चेद्भारतं नाथ भारतीशापतः पुरा ।
तवाऽऽज्ञया च राजेन्द्र तपसा चैव साम्प्रतम् २६

गंगा बोली-हे नाथ ! यदि पूर्वविहित सरस्वती के शाप से और आपकी आज्ञा से अवश्य ही मुझको भारत में जाना होगा ॥ २६ ॥

दास्यन्ति पापिनो मह्यं पापानि यानि कानि च ।
तानि मे केन नश्यन्ति तमुपायं वद प्रभो ॥ २७ ॥

तो पापी मनुष्य मेरे जल में जा पापमल धोवेंगे मैं किस प्रकार उनसे छुटकारा पाऊँगी? इसका उपाय बताइये ॥२७॥

कलिकालं परिमितं स्थितिर्मे तत्र भारते ।
कदायास्यामि देवेश तद्विष्णोः परमंपदम्॥२८॥

और कितने समय तक मुझे भारत में रहना होगा, कितने दिनों के पीछे मैं आपके परमपद को प्राप्त हूँगी? ॥ २८ ॥

श्रीनारायण उवाच ।

अद्यप्रभृति देवेशि कलेः पञ्चसहस्रकम् ।
वर्षं स्थितिस्ते भारत्याः शापेन भारते भुवि ॥
भारतस्था जनाः सर्वे पूजयिष्यन्ति भक्तितः २९

श्रीनारायण ने कहा—हे गंगे! भारती के शापवश आज से कलि के पाँच हज़ार वर्ष तक तुमको भारत में रहना होगा और भारतवासी सब मनुष्य भक्तिभाव से तुम्हारी पूजा करेंगे ॥ २९ ॥

गङ्गागङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ३०

जो मनुष्य कई योजन दूर से भी 'गङ्गा, गङ्गा' इस प्रकार कहता है वह सम्पूर्ण पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक को प्राप्त होता है ॥ ३० ॥

सहस्रपापिनां स्नानाद्यत्पापं ते भविष्यति ।
प्रकृतेर्भक्तसंस्पर्शादेव तद्ध विनंक्ष्यति ॥ ३१ ॥

हजार हज़ार पापियों के स्नान करने से तुमको जो पाप स्पर्श होगा वह अविचलित चित्त से सहना; क्योंकि प्रकृति मंत्र उपासक भक्तों के स्पर्श से तुम्हारे सम्पूर्ण पातक नष्ट होंगे ॥ ३१ ॥

अज्ञानी त्वज्जलस्पर्शाद्यदि प्राणान्समुत्सृजेत् ।
तस्मै ददामि सालोक्यं करोमि तं च पार्षदम् ३२

यदि कोई अज्ञानी पुरुष तुम्हारे जल को स्पर्श करके देह त्याग करे उसको सालोक्य प्रदान करके पार्षद करता हूँ ३२

अन्यत्र वा त्यजेत्प्राणांस्त्वन्नामस्मृतिपूर्वकम् ।
तस्मै ददामि सारूप्यमसंख्यं प्राकृतं लयम्॥३३॥

और यदि भक्तिभाव से तुम्हारा नाम स्मरण करके अन्यत्र देह त्याग करे उसको असंख्य प्राकृत लयपर्यन्त सारूप्य प्रदान करता हूँ ॥ ३३ ॥

यत्र यत्र स्मृतास्ते च ज्ञानेन ज्ञानिनः सति ।
जीवन्मुक्ताश्च ते पूता मद्भक्तेः संविधानतः॥३४॥

भक्तगण जिस किसी स्थान में वास क्यों न करें, भक्तिपूर्वक मुझको स्मरण करने पर उस भक्ति के प्रभाव से वह जीवन्मुक्त होते हैं और पवित्र होते हैं ॥ ३४ ॥

इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तां च प्रत्युवाच भगीरथम् ।
स्तुहि गंगामिमां भक्त्यापूजांचकुरुसाम्प्रतम् ३५

भगवान् श्रीविष्णु ने गंगा से इस प्रकार कहकर भगीरथ

से कहा—हे वत्स ! अब तुम भक्तिपूर्वक गंगा का स्तोत्र और गंगा की पूजा करो ॥ ३५ ॥

नारद उवाच।

श्रोतुमिच्छामि देवेश लक्ष्मीकान्त जगत्पते।
विष्णोर्विष्णुपदीस्तोत्रं पापघ्नं पुण्यकारकम् ३६

नारदजी ने कहा—हे देवेश ? अब लक्ष्मीकान्त जगत्पति विष्णु के चरणों से उत्पन्न पतितपावनी श्रीगंगा (भागीरथी, अलकनन्दा, मन्दाकिनी) का पापनाशक पुण्यप्रद स्तोत्र सुनने की इच्छा करता हूँ, आप कहिये ॥ ३६ ॥

श्रीनारायण उवाच।

शृणु नारद वक्ष्यामि पापघ्नं पुण्यकारणम्॥३७॥

श्रीनारायण बोले—हे नारद ! अब पापनाशक पुण्यप्रद गंगा-स्तोत्र कीर्त्तन करता हूँ, तुम सुनो ॥ ३७ ॥

अथ गंगास्तोत्रम्।

शिवसंगीतसंमुग्धश्रीकृष्णाङ्गसमुद्भवाम्।
राधाङ्गद्रवसंयुक्तां तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ३८
यज्जन्मसृष्टेरादौ च गोलोके रासमण्डले।
सन्निधाने शंकरस्य तां गंगां प्रणमाम्यहम् ३९
गोपैर्गोपीभिराकीर्णे शुभे राधामहोत्सवे।
कार्तिकीपूर्णिमायां च तां गंगां प्रणमाम्यहम्४०

कोटियोजनविस्तीर्णा दैर्घ्यें लक्षगुणा ततः ।
समावृता या गोलोकं तां गंगां प्रणमाम्यहम् ४१
षष्टिलक्षयोजनया ततो दैर्घ्यें चतुर्गुणा ।
समावृता या वैकुंठे तां गंगां प्रणमाम्यहम् ४२
त्रिंशल्लक्षयोजना या दैर्घ्यें पञ्चगुणा ततः ।
आवृता ब्रह्मलोके या तां गंगां प्रणमाम्यहम् ४३
त्रिंशल्लक्षयोजना या दैर्घ्यें चतुर्गुणा ततः ।
आवृता शिवलोके या तां गंगां प्रणमाम्यहम् ४४
लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्यें सप्तगुणा ततः ।
आवृता ध्रुवलोके या तां गंगां प्रणमाम्यहम् ४५
लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्यें पञ्चगुणा ततः ।
आवृता चन्द्रलोके या तां गंगां प्रणमाम्यहम् ४६
षष्टिसहस्रयोजना या दैर्घ्यें दशगुणा ततः ।
आवृता सूर्यलोके या तां गंगां प्रणमाम्यहम् ४७
लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्यें पञ्चगुणा ततः ।
आवृता या तपोलोके तां गंगां प्रणमाम्यहम् ४८
सहस्रयोजनायामा दैर्घ्यें दशगुणा ततः ।

आवृता जनलोके या तां गंगां प्रणमाम्यहम् ४९
दशलक्षयोजना या दैर्घ्यें पञ्चगुणा ततः ।
आवृता या महर्लोके तां गंगां प्रणमाम्यहम् ५०
सहस्रयोजनायामा दैर्घ्यें शतगुणा ततः ।
आवृता या च कैलासे तां गंगां प्रणमाम्यहम् ५१
शतयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्यें दशगुणा ततः ।
मन्दाकिनी येन्द्रलोके तां गंगां प्रणमाम्यहम् ५२
पाताले भोगवती चैव विस्तीर्णा दशयोजना ।
ततो दशगुणा दैर्घ्यें तां गंगां प्रणमाम्यहम् ५३
क्रोशैकमात्रविस्तीर्णा ततः क्षीणा च कुत्रचित् ।
क्षितौ चाऽलकनन्दा या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम् ५४
सत्ये या क्षीरवर्णा च त्रेतायामिन्दुसन्निभा ।
द्वापरे चन्दनाभा या तां गंगां प्रणमाम्यहम् ५५
जलप्रभा कलौ या च नाऽन्यत्र पृथिवीतले ।
स्वर्गे च नित्यं क्षीराभा तां गंगां प्रणमाम्यहम् ५६
यत्तोयकणिकास्पर्शे पापिनां ज्ञानसंभवः ।
ब्रह्महत्यादिकं पापं कोटिजन्मार्जितं दहेत् ५७

इत्येवं कथिता ब्रह्मन् गंगापद्यैकविंशतिः ।
स्तोत्ररूपं च परमं पापघ्नं पुण्यजीवनम् ५८

श्रीनारायण उवाच ।

नित्यं यो हि पठेद्भक्त्या सम्पूज्य च सुरेश्वरीम् ।
सोऽश्वमेधफलं नित्यं लभते नाऽत्र संशयः ५९

जो मनुष्य प्रतिदिन भक्तिपूर्वक श्रीगंगाजी की पूजा करके उनका स्तोत्र पढ़ता है, उसको अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ५९ ॥

अपुत्रो लभते पुत्रं भार्याहीनो लभेत्स्त्रियम् ।
रोगात्प्रमुच्यते रोगी बन्धान्मुक्तो भवेद्ध्रुवम् ६०

इसके प्रभाव से अपुत्र पुरुष को पुत्र और भार्याहीन पुरुष को भार्या लाभ होती है, रोगी पुरुष रोग से छूटता है और बँधा हुआ पुरुष बन्धन से छूट जाता है ॥ ६० ॥

स्तोत्रेणानेन गंगा च स्तुत्वा चैव भगीरथः ।
जगाम तां गृहीत्वा च यत्र नष्टाश्च सागराः ६१

हे नारद ! राजा भगीरथ उपर्युक्त स्तोत्र से गंगा का स्तवन करके उनको संग ले जहाँ सगर सन्तानगण कपिलदेव के शाप से भस्म हुए थे वहाँ गये ॥ ६१ ॥

वैकुण्ठं ते ययुस्तूर्णं गंगायाः स्पर्शवायुना ।
भगीरथेन सा नीता तेन भागीरथी स्मृता ६२

इत्येवं कथितं सर्वं गंगोपाख्यानमुत्तमम् ६२ ॥

भागीरथी के सलिलकणवाही वायु के स्पर्श से वह तत्काल मुक्त होकर वैकुण्ठधाम में चले गये। भगीरथ जो गंगा को भूलोक में लाये थे, इस कारण इसका नाम भागीरथी हुआ। हे वत्स, यह मैंने तुम्हारे पास सम्पूर्ण गंगा का उपाख्यान वर्णन किया है ॥ ६२ ॥ इति श्रीदेवीभागवते श्रीनारायणनारदसंवादे गङ्गोत्तरी-माहात्म्यं समाप्तम् ॥

अथ श्रीक्षेत्र-माहात्म्यप्रारम्भः।

हरिद्वार से ७७ मील है।

कोलोत्तमांगमारभ्य यावत्कोलकलेवरम्।
तावच्छ्रीसंज्ञकं क्षेत्रं योजनानां चतुष्टयम् ॥१॥

स्कन्दजी बोले—कोल के मस्तक से लेकर उसके पाद-पर्यन्त चार योजन विस्तार का श्रीक्षेत्र (श्रीनगर) है ॥ १ ॥

अहो धन्या मनुष्येषु पश्यन्ति सकृदेव हि।
इदं क्षेत्रं महापुण्यं देवा एवं न संशयः ॥ २ ॥

जो मनुष्य इस का एकवार भी दर्शन करते हैं, वे मनुष्यों में श्रेष्ठ होकर देवताओं के सदृश पूजनीय होते हैं, इसमें संशय नहीं ॥ २ ॥

यत्र देवी परा साक्षाद्वर्तते कंसमर्दिनी।
नानायुगे युगे विप्र पुरा नन्दगृहे शुभा ॥ ३ ॥

हे विप्र! जहाँ प्रतियुग में नन्दगोप के घर में कंस को

मारने को जो देवी उत्पन्न होती है, वह वहाँ कंसमर्दिनी नाम से स्थित रहती है ॥ ३ ॥ के० १७७ अ० ॥

देव्या च निहतौ यत्र चण्डमुण्डौ महासुरौ ॥
सत्यसन्धेन वै राज्ञा निहतः कोलरूपधृक् ॥४॥

श्रीभगवतीजी ने चण्ड मुण्ड महादैत्यों का इसी श्रीक्षेत्र स्थान में वध किया था और सत्यसन्ध राजा ने भी यहाँ ही कोल का वध किया है ॥ ४ ॥

यत्रार्जुनः पाण्डुपुत्रस्तपस्तेपे मुनीश्वराः ।
शस्त्रं पाशुपतं नाम प्राप देवान्महेश्वरात् ॥ ५ ॥

हे मुनीश्वरो ! पाण्डुपुत्र अर्जुन ने भी यहाँ ही तप किया था, तब उनको शिवजी से पाशुपत अस्त्र प्राप्त हुआ ॥ ५ ॥

श्रीयन्त्र।

श्रीशिलायाश्च माहात्म्यं शृणु चैकमना अतः।
गंगाया दक्षिणे तीरे शिला परमदुर्लभा ॥ ६ ॥
श्रीशिलेति समाख्याता सर्वैश्वर्यप्रदायिनी ।
यत्किञ्चिद्दीयते कामं तत्सर्वं लभते परम् ॥७॥

उत्फालक ऋषि कहते हैं—हे राजन् ! मैं तुम्हें अब श्रीशिला (श्रीयंत्र) का माहात्म्य सुनाता हूँ, एकाग्रचित्त से उसे सुनो श्रीअलकनन्दा के दक्षिण तट में श्रीशिला नामक श्रीयंत्र है जो अत्यन्त दुर्लभ है, जिसके पूजनादि करने से मनुष्य सम्पूर्ण ऐश्वर्य प्राप्त करता है, वहाँ जो कुछ अर्पण किया जाता है वह कई गुना अधिक हो जाता है ॥ ६ । ७ ॥ के० १६१ अ० ॥

न विद्यते हि कुत्रापि शिलायाश्च समं क्वचित् ।
दर्शनादपि यस्याश्च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ८ ॥

और इस श्रीयंत्र के समान कोई अन्य तीर्थ नहीं है, जिसके दर्शनमात्र ही से मनुष्य सम्पूर्ण पापों से छूट जाता है ॥ ८॥

कोटिजन्मकृतैः पापैर्मुच्यते स्पर्शनादपि ।
पूजनादपि राजेन्द्र सर्वैश्वर्यपतिर्भवेत् ॥ ९ ॥

हे राजेन्द्र ! कोटि जन्म के किये हुए जो पाप हैं वह इस क्षेत्र के स्पर्श ही से नाश हो जाते हैं और यथाविभव भक्ति द्वारा पूजन करने से मनुष्य सर्वसम्पत्तियुक्त हो जाता है॥ ९॥

लिङ्गं मारकतं दृष्ट्वा हृष्टास्ते मुनिसञ्चयाः ।
प्रकुर्युरभिषेकं वै नानावेदार्थवादिनः ॥ १० ॥

कमलेश्वर तीर्थ में मरकतमय लिङ्ग को देख मुनिसमाज अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उस लिङ्ग का वेदमंत्रों से अभिषेक किया ॥ १० ॥

पुनः कदाचिद्भगवान् रामरूपी जनार्दनः ।
पूजयामास कमलैः प्रत्यहं शतसंमितैः ॥
ततोऽवधि महाराज कमलेश्वरतां गतः ॥ ११ ॥

हे महाराज ! फिर किसी समय में रामावतारधारी भगवान् ने हर रोज सौ कमलों से शिवजी का पूजन किया था तब से इस शिव का नाम कमलेश्वर हुआ ॥ ११ ॥ के० १८८ अ० ॥

अथ रुद्रप्रयाग-माहात्म्यप्रारम्भः ।

हरिद्वार से ९५ मील है ।

वशिष्ठ उवाच ।

शृणु प्रिये प्रवक्ष्यामि यथा वै नारदः पुरा ।
श्रीगंगापुलिने देवि नारदस्तप आचरत् ॥१॥

वसिष्ठजी अरुन्धती से बोले—हे प्रिये ! पहिले जिस प्रकार नारदजी ने श्रीगंगाजी के तीर पर तप किया था सो मैं कहता हूँ ॥ १ ॥ के० ६३ अ० ॥

रुद्रप्रयागे तन्वंगि सर्वतीर्थोत्तमे शुभे ।
महान्तो यत्र नागाश्च शेषाद्यास्तप आचरन् २

हे तन्वंगि ! सर्व तीर्थों में उत्तम शुभ रुद्रप्रयाग तीर्थ में जहाँ कि शेष आदि महात्मा नागों ने भी तप किया था ॥ २ ॥

तत्र स्नात्वा नारदोऽपि रुद्रतीर्थे महामतिः ।
गंगा मन्दाकिनीसंगे परां सिद्धिमतो गतः ३

उस रुद्रतीर्थ अर्थात् रुद्रप्रयाग में अलकनन्दा और मन्दाकिनी के संगम पर स्नान करने से महाज्ञानी नारद मुनि को सर्वोत्तम सिद्धि प्राप्त हुई ॥ ३ ॥ के० ७७ अ० ॥

अतः पृथिव्यां तच्छ्रेष्ठं रुद्रतीर्थं वरानने ।
यत्र ब्रह्मादयो देवा नागानन्तादयः परे ॥
परां सिद्धिं समापन्नास्ततस्तत्संश्रये पुमान्॥४॥

इसलिये हे देवि! रुद्रप्रयाग नामक तीर्थ पृथिवी में सबसे श्रेष्ठ है, जहाँ नारद के अतिरिक्त ब्रह्मा आदि देवगण तथा अनन्त आदि नाग सर्वोत्तम सिद्धि को प्राप्त हुये, इस कारण हे वरानने! अपने कल्याण की कामना करनेवाले को श्रीरुद्रप्रयाग नामक तीर्थ में जाकर अवश्य आराधना करनी चाहिये ॥ ४ ॥

श्रुत्वा यत्सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः।
पठित्वा प्राप्यते स्थानं श्रीशिवस्य परात्मनः ५

इस रुद्रप्रयाग माहात्म्य को श्रवण करने से विना सन्देह यात्री समस्त पापों से छूट जाता है और इसका पाठ करने से परमात्मा श्रीशिव के स्थान का लाभ होता है ॥ ५ ॥

अथ कर्णप्रयाग-माहात्म्यम्।

वशिष्ठ उवाच।

अन्यच्च तव वक्ष्येऽहं तीर्थं परमदुर्लभम्।
यत्र कर्णः पुरा तन्वि तपस्तेपे यतात्मवान् ॥१॥

वशिष्ठजी बोले--हे अरुन्धति! और भी हम तुम्हारे प्रति परम दुर्लभ तीर्थ (कर्णप्रयाग) का वर्णन करते हैं जहाँ कि पूर्वकाल में कर्ण राजा ने नियमपूर्वक तप किया था ॥ १ ॥ के० ८१ अ० ॥

तत्रासंख्यानि लक्षाणि मुक्तानि ब्रह्मरक्षसाम्।
गंगापिण्डारकासंगे शिवक्षेत्रे सुरालये ॥
कर्णो नाम महाराजो महादीक्षां समाश्रितः २॥

और वहां तीन लाख ब्रह्मराक्षसों को मुक्ति मिली है । गंगा (अलकनन्दा) और पिंडारक (पिंडरनदी) के संगम (प्रयाग) में देव-मन्दिर शिवक्षेत्र में राजा कर्ण ने यज्ञदीक्षा धारण की ॥ २ ॥

सूर्यमाराधयामास यज्वा यज्ञे स भूमिपः ।
ततः कतिपयाहैस्तु वरं प्रादान्महात्मने ॥ ३ ॥

और यज्ञ में राजा कर्ण ने सूर्यनारायण की आराधना की, कुछ दिन के बाद सूर्य ने कर्ण राजा को वर दिया ॥ ३ ॥

कवचं च तथाभेद्यं तूणीरं च तथाक्षयम् ।
अजेयत्वं महावीरैः क्षेत्रनाम तथा ददौ ।
कर्णप्रयागनाम्ना वै क्षेत्रं तदवधिस्मृतम् ॥४॥

अभेद्य कवच तथा अक्षय तर्कस और उसे अजेयत्व प्रदान किया, उसी दिन से उस क्षेत्र का नाम कर्णप्रयाग हुआ ॥ ४ ॥

सूर्यकुण्डं च तत्रास्ति चतुर्वर्गफलप्रदम् ।
उमा नाम्नी तथा देवी तत्रैवास्ति महेश्वरी ५ ॥

वहां सूर्यकुण्ड जो है वह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थों का देनेवाला है और वहां उमा नाम की देवी है ॥५॥

उमेश्वरो महादेवः सर्वयज्ञफलप्रदः ।
अत्र यो मृतिमाप्नोति कल्पैः शिवपुरे वसेत् ६ ॥

और उमेश्वर नाम के महादेवजी सब यज्ञों के फल देनेवाले है । इस क्षेत्र में जो प्राणी मरेगा वह अनेक कल्पपर्यन्त शिव-लोक में रहेगा ॥ ६ ॥

नन्दप्रयाग-माहात्म्यम् ।

बदरीनाथ से ५५ मील है।

वशिष्ठ उवाच ।

नन्दप्रयागे तु यथा बभूव मम वल्लभे ।
यज्ञो नन्दस्य राज्ञो वै तच्छृणुष्व समाहिता १॥

वशिष्ठजी कहने लगे कि हे प्रिये अरुन्धति ! नन्दप्रयाग क्षेत्र में जिस प्रकार राजा नन्द का यज्ञ हुआ था वह हम तुम्हारे प्रति वर्णन करते हैं। तुम एकाग्र मन करके श्रवण करो''क्योंकि यहाँ से स्थूल बदरिकाश्रम प्रारम्भ होता है॥१॥के०५८ अ०

नन्दो नाम महाराजो धर्मात्मा सत्यसंगरः ।
यज्ञं चकार विधिवद्बह्वन्नं भूरिदक्षिणम् ॥ २ ॥

यहाँ धर्मात्मा और सत्यवादी नन्द नामक महाराज ने विधिपूर्वक यज्ञ किया, उस यज्ञ में ब्राह्मणों को बहुत अन्न और दक्षिणा दी ॥ २ ॥

तत्र ब्रह्मादयो देवा भागं स्वं स्वं पुराऽऽददुः ॥
मूर्तिमन्तो महात्मानो भक्त्या तस्य महीपतेः ३

इस यज्ञ में ब्रह्मादिक देवता मूर्तिमान् प्रकट होकर नन्द महाराज की भक्ति से सब महात्माओं ने अपना-अपना यज्ञ भाग प्रसन्नता से ग्रहण किया ॥ ३ ॥

नाम चक्रुश्च सन्तुष्टास्तन्नाम्ना समलंकृतम् ।
संगमे स्नानमात्रेण शुद्धानन्दालकनन्दयोः ४

और प्रसन्नतापूर्वक उस क्षेत्र का नाम राजा के नाम से नन्दप्रयाग रक्खा। इस नन्दा नदी और अलकनन्दा के संगम (प्रयाग) पर स्नान करने से मनुष्य शुद्ध हो जाता है ॥ ४ ॥

तत्र सन्निहितो विष्णुर्लक्ष्म्या सह शिवेन च ।
स्नानमात्रेण पापौघा नाशं यान्ति न संशयः ५ ।

इस नन्दप्रयाग में लक्ष्मी एवं शिवजी के साथ विष्णु भगवान् नित्य निवास करते हैं, इससे इस प्रयाग के स्नानमात्र से पापों के समूह नष्ट होते हैं, इसमें संदेह नहीं ॥ ५ ॥

अथ गुह्यवाराणसी-माहात्म्यम् ।

हरिद्वार से ११६ मील है।

केदारदक्षिणे भागे माने योजनषट्कके ।
गुह्यं वाराणसीक्षेत्रं योजनद्वयविस्तृतम् ॥ १ ॥

श्रीकेदारनाथजी के दक्षिण भाग में वहाँ से छः योजन (२४ मील) नीचे दो योजन विस्तारवाली गुप्तवाराणसी अर्थात् गुप्तकाशी नामक क्षेत्र है ॥ १ ॥ के० २०० अ० ॥

यत्र ब्रह्मर्षयः सर्वे तद्ध्यानपरिनिष्ठिताः ।
प्रापुश्च परमं स्थानं यत्र देवो महेश्वरः ॥
माहेश्वरत्वमापन्नाश्चन्द्रार्द्धांकितशेखराः ॥ २ ॥

जहाँ साक्षात् शिव काशी विश्वनाथ नाम से प्रख्यात होकर निवास करते हैं और जहाँ श्रीकाशी विश्वनाथ की आराधना करते हुए उनके ध्यान में मग्न रहकर अनेक ब्रह्मर्षियों ने शिवलोक पाया तथा साक्षात् शिवरूप होगये ॥ २ ॥

इदं स्थानं गुह्यतमं यतो गुप्तेति काशिका।
यस्याः स्मरणादेव नश्यन्ति परमापदः ॥ ३ ॥

यह स्थान अत्यन्त ही गुप्त है, हे अगस्त्य! इसी कारण इसका गुप्तकाशी नाम पड़ा। इसका केवल यादमात्र करने ही से परम आपत्तियों का नाश होता है ॥ ३ ॥

सिद्धैर्नुतश्च तत्राहं ततः सिद्धेश्वरः स्मृतः।
तत्र गंगा च यमुना गुप्ते तिष्ठत ईश्वरे ॥
तत्र यः स्नाति मनुजो मुक्तिं प्राप्नोति दुर्लभाम् ४

वहाँ सिद्धजनों (महर्षियों) ने हमें पूजा था इसी कारण हमारा सिद्धेश्वर नाम हुआ। वहाँ शिवजी में गंगा और यमुना गुप्त रूप से ठहरती हैं और जो मनुष्य उस गंगा यमुना की धाराओं में तथा कुण्ड में स्नान करता है उसे दुर्लभ मुक्ति की प्राप्ति होती है ॥ ४ ॥

ददाति स्वर्णरत्नानि वासांसि द्विजपुंगव।
अक्षयं पुण्यमाप्नोति मुक्तिं चापि परत्र सः ॥५॥

हे द्विजपुंगव! जो मनुष्य सुवर्ण, वस्त्र, रत्न, भूषण, शय्या-दानादि दान देता है उसे इस लोक में पुण्य, परलोक में मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥ ५ ॥

अथ महिषमर्दिनी-माहात्म्यम्।

स्कन्द उवाच

केदारदक्षिणे भागे धरो महिषखण्डकः।

पुरायदा महादेवी जघान महिषासुरम् ॥ १ ॥

स्कन्दजी बोले--हे अगस्त्यमुने ! श्रीकेदारनाथ से दक्षिण भाग महिषखण्ड (मैखण्डा) नामक स्थान में महिषासुर का धड़ है । पहले जब श्रीदुर्गाजी ने महिषासुर का संहार किया ॥ १ ॥ के० २०१ अ० ॥

तस्य खण्डं समादाय चिक्षेप गिरिसत्तमे ।
आविर्भूतापि तत्रैव नाम्ना महिषमर्दिनी ॥
यस्या दर्शनमात्रेण नरः शिवपुरं व्रजेत् ॥२॥

तब उसका धड़ उठाकर पर्वत में फेंका और आप भी वहाँ प्रकट होकर महिषमर्दिनी नाम से विख्यात हुई जिसके दर्शन से ही मनुष्य शिवलोक प्राप्त करता है ॥ २ ॥

आराधयति यो भक्त्या देवीं महिषमर्दिनीम् ॥
पठेत्सप्तशतींचापि प्राप्नुयात् वाञ्छितंफलम् ३॥

और जो मनुष्य यहाँ भक्तिपूर्वक भगवती महिषमर्दिनी की पूजा करे और सप्तशती देवी भागवतादि का पाठ करे उसको मनचाहा फल मिलता है ॥ ३ ॥

इदं सिद्धतमं पीठं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
दर्शनादेव सिद्धिः स्यात्किं पुनस्तत्र तिष्ठताम् ४

यह सिद्ध पीठ भोग और मोक्ष का देनेवाला है । जब उसके दर्शन करने ही से सिद्धि होती है, तब वहाँ निवास करने से तो कहना ही क्या है ॥ ४ ॥ इस देवीजी के नाम से महिष-खण्ड का अपभ्रंश "मैखण्डा" नाम पड़ा है ।

श्रीत्रियुगीनारायणजीकी स्तुति ।

लसत शुभ सुविशाल मन्दिर विष्णु नगरी पावनम् ।
त्रियुगिनारायण त्रिलोकीनाथ जहँ मन भावनम् ॥ १ ॥
मुकुट कुण्डल ललित अतिकर शंख चक्र गदाब्जकम् ।
चतुरभुज शुभ दिव्य सोहत भगतजन चित रञ्जनम् ॥ २ ॥
श्रीसरस्वति सहित कमला चँवर डोलत मनहरम् ।
सकल सुरगण करत जय जय भगत खलदल गंजनम् ॥ ३ ॥
तीनयुग की अनल ज्वाला ज्वलत नाम धनञ्जयम् ।
गौरि शम्भु विवाह अगनी वेद कीनो भाषणम् ॥ ४ ॥
हवन महिमा अतुल अति जहँ त्रियुगि अगनी उज्ज्वलम् ।
करि जहाँ को भस्म धारण नशत पाप महाघनम् ॥ ५ ॥
ब्रह्मकुण्ड अपार महिमा पार पायो नहिं सुरम् ।
स्नान फल कामादि नाशन दान फल भव मोक्षणम् ॥ ६ ॥
कुण्डमधि जो नाग दर्शन लभत ते नर धन्यकम् ।
विष्णु नाभिज धार सरसुति आचमन फल शोभनम् ॥ ७ ॥
स्तुति पढ़त जो प्रात नित उठि लभत मन वाञ्छित फलम् ।
द्विज कुलानँद त्रियुगि पूजक चरण चित नारायणम् ॥ ८ ॥

अथ त्रियुगीनारायण-माहात्म्यं प्रारभ्यते ।

ईश्वर उवाच ।

अथान्यत्तु प्रवक्ष्यामि क्षेत्राणां क्षेत्रमुत्तमम् ।
केदारमण्डले एव यत्र गत्वा हरिर्भवेत् ॥ १ ॥

शिवजी बोले—हे पार्वति ! अब इसके अनन्तर एक क्षेत्र का हम वर्णन करते हैं, वह क्षेत्र भी समस्त क्षेत्रों में परमोत्तम केदारमण्डल ही में विद्यमान है, जिसको श्रीत्रियुगीनारायण कहते हैं, उसमें यात्रा करने से मनुष्य साक्षात् हरिरूप हो जाता है॥ १॥

त्रिविक्रमातटे पश्चान्नारायणसुतीर्थकम्।
यस्य दर्शनमात्रेण हरिभक्तिः प्रवर्द्धते ॥ २ ॥

त्रिविक्रमातट के पीछे श्रीत्रियुगीनारायण का उत्तम तीर्थ है, जिसके दर्शनमात्र ही से हरि भगवान् में भक्ति बढ़ती है॥२॥

के० ४३ अ० ॥

त्रिविक्रमातटादूर्द्ध्वं सार्द्धक्रोशे महत्फलम्।
नारायणक्षेत्रमिति तस्मिन्वै यज्ञपर्वते ॥ ३ ॥

त्रिविक्रमातट (सों द्वारा) के ऊपर डेढ़ कोश की दूरी पर महत्फल का देनेवाला श्रीत्रियुगीनारायण का क्षेत्र है, उसके ऊपर रमणीय यज्ञ पर्वत है॥ ३॥

यत्र ब्रह्मादयो देवा हरिपूजनमानसाः।
यजयामासुरपि तं नैवेद्यैर्हवनैस्तथा ॥ ४ ॥

हे पार्वति ! उस पर्वत से ब्रह्मादि देवतों ने हरि की पूजा में मन लगाकर यज्ञ किया और शुद्धचित्त से नैवेद्य तथा हवन के द्वारा उनका पूजन किया था॥ ४॥

तल्लिङ्गन्तु प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
नित्यं तत्र स्थितो वह्निर्दृश्यते मुक्तिदो महान्॥५॥

उरु (हरि की स्थिति) का चिह्न अब हम कहते हैं, जहाँ जाने से अमृत (मोक्ष सुख) का लाभ होता है। वहाँ नित्य प्रति अग्नि मुक्ति को देनेवाला महान् दृष्टिगोचर होता है ५॥

विवाहस्थानमेतद्वै गौरीशंकरयोः शुभम् ।
तत आरभ्य वसते नित्यमत्र धनञ्जयः ॥ ६ ॥

गौरी और शंकर के विवाह का यह शुभ स्थान है। उसी दिन से लेकर आज तक उस क्षेत्र में धनञ्जय नाम के अग्निदेव नित्य निवास करते हैं ॥ ६ ॥

उपोष्य दशरात्रं तु पापैः कोटिभिरावृतः ।
प्राणांस्त्यजति पूतात्मा वैकुण्ठनिलये वसेत् ॥७॥

जो यात्री दश दिन पर्यन्त उपवास (निराहार) रहकर उस स्थान में प्राणों को छोड़े तो वह चाहे करोड़ों पापों से भी युक्त होवे तो सम्पूर्ण पापों को छोड़कर पवित्रात्मा होकर वैकुण्ठ लोक में निवास करता है ॥ ७ ॥

सरस्वतीति विख्याता धारा परमपावनी ।
श्रीविष्णोर्नाभितस्तत्र आयाति दुरितापहा ८

उस विष्णु तीर्थ में परम पवित्र करनेवाली सरस्वती नाम की धारा विख्यात है, जो श्रीत्रियुगीनारायणजी की नाभि-कमल से निकल कर बह रही है, वही सम्पूर्ण पापों को नाश करनेवाली है ॥ ८ ॥

नमो नारायणेत्युक्त्वा मन्त्रपूतं जलं पिबेत् ।
न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ ९ ॥

जो मनुष्य सरस्वती धारा के जल को 'ॐनमो नारायणाय' इस मंत्र से पवित्र कर पान करता है उस मनुष्य की सौ करोड़ कल्प तक पुनरावृत्ति नहीं होती ॥ ६ ॥

सकृदाचम्य देवेशि नारायणविनिःसृतम् ।
जलं सारस्वतं देवि किं तेन न कृतं भवेत् ।१०।

हे देवि ! नारायण से निर्गत हुए उस सारस्वत जल का जिस मनुष्य ने एक बार भी (ब्रह्मकुण्ड में) आचमन किया है उसने मानो सम्पूर्ण शुभ कर्मों को प्राप्त कर लिया ॥ १० ॥

धन्या लोके नरा ये तु नारायणसमीपके ।
जलं पिबन्ति तेषां वै दश पूर्वा दशापरे ॥
तृप्ता यान्ति परं स्थानं पितरो हृष्टमानसाः॥ ११॥

और वे मनुष्य धन्य हैं जो "त्रियुगी" नारायण के समीप जाकर उस सारस्वत जल को पीते हैं यहाँ तक कि उनके दशकुल आगे के और दशकुल पीछे के भी पितर लोग तृप्त होकर प्रसन्न चित्त से परमधाम वैकुण्ठ को जाते हैं ॥ ११ ॥

तस्मिन्नग्नौ तु ये मर्त्या एकामप्याहुतिं ददुः ।
ते सर्वे मुक्तिमापन्नाः पुनरावृत्तिदुर्लभाः ॥१२॥

उस तीर्थ में जो मनुष्य तीन युग से अखण्डित प्रज्ज्वलित अग्नि में यवादि होम द्रव्य से एक भी आहुति देते हैं वे लोग जन्म मरण के चक्र से छूटकर दुर्लभ मोक्ष पद को प्राप्त होते हैं ॥ १२ ॥

हवनं कारयेत्तत्र नारायणसुमन्त्रतः ।

धन्यो भवति लोकेषु नरः पापविवर्जितः॥ १३॥

और उस स्थान के विषय जो मनुष्य नारायण के "ॐ नमो नारायणाय" इस अष्टाक्षर उत्तम मंत्र से ब्राह्मणों के द्वारा हवन करवाता है वह सम्पूर्ण पापों से छूटकर संसार में सौभाग्यशाली होता है॥ १३॥

भस्मनो धारणं कृत्वा सर्वदेवमयो भवेत्।
माहात्म्यं भस्मनः केन शक्यते मम वल्लभे॥ १४॥

उस अग्निकुण्ड "धूनी" के राख को शिर में धारण करने से मनुष्य देवता के तुल्य होजाता है। कौन ऐसा है जो कि भस्म के माहात्म्य को वर्णन कर सके अर्थात् कोई नहीं॥ १४॥

भस्मदिग्धशरीरस्य रोमं रोमं ऋषिर्भवेत्।
तद्भस्मधारिणं दृष्ट्वा पापं वर्षकृतं दहेत्॥ १५॥

भस्मलिप्त यात्री का शरीर बाल-बाल में ऋषि तुल्य हो जाता है। उस भस्मधारी यात्री के दर्शनमात्र ही से वर्षों के किये हुए पाप नष्ट होजाते हैं॥ १५॥

तत्रैव ब्रह्मकुण्डाख्यं तीर्थं परमपुण्यदम्।
स्नात्वा यत्र वरारोहे ब्रह्मलोकगतिर्भवेत्॥ १६॥

हे वरारोहे! उसी नारायण क्षेत्र में बड़े पुण्यों को देनेवाला ब्रह्मकुण्ड नाम का तीर्थ है, जिसमें स्नान करने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है॥ १६॥

तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि तज्जलं पीतवर्णकम्।

तत्र चाल्पतरा नागाः स्थापिता भीतिदाः प्रिये १७

अब उसके चिह्न को भी मैं तुम्हारे पास कहता हूँ कि उस "ब्रह्मकुण्ड" नाम तीर्थ का जल पीले वर्ण का है, हे प्रिये! उसमें पापियों को डराने के लिये छोटे-छोटे नाग (सर्प) स्थापित किये हुए हैं॥ १७॥

न दंशन्ति च ते नागा भीतिकारणमेव ते।
ब्रह्मणः पूजनं कृत्वा स्नायात्तत्र शुभास्पदे १८॥

किन्तु वे नाग डसते नहीं केवल भय के कारण हैं, हे शुभास्पदे! उस ब्रह्मकुण्ड में ब्रह्मरूप तीर्थ पुरोहित नारायण के अर्चक को पूजकर स्नान को करे॥ १८॥

तस्य वै दक्षिणे भागे विष्णुतीर्थमिति स्मृतम्।
यत्र स्नात्वा च पीत्वा च विष्णुसायुज्यमाप्नुयात्

उस ब्रह्मकुण्ड के दक्षिण भाग में विष्णुतीर्थ (विष्णुकुण्डी) नामक कुण्ड है, जिसमें स्नान करने से अथवा आचमन ही मात्र से मनुष्य विष्णु सायुज्यता को प्राप्त होता है॥ १९॥

आकिरीटांघ्रिपर्यन्तं पश्येन्नारायणं विभुम्।
प्रदक्षिणां हरेः कृत्वा अश्वमेधफलं लभेत्।२०।

हे प्रिये, जो मनुष्य किरीट मुकुट से लेकर चरणकमलों पर्यन्त श्रीत्रियुगीनारायणजी के दर्शन कर परिक्रमा करता है, उसको अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है॥ २०॥

गोभूहिरण्यशय्याश्च दानानीह ददाति यः।

धर्मार्थकाममोक्षाणां फलभाक्स पुमान्भवेत् २१

जो मनुष्य श्रीत्रियुगीनारायण क्षेत्र में गोदान, भूमिदान, सुवर्णदान, शय्यादान देता है वह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष फल को भोगनेवाला होता है ॥ २१ ॥

दृष्ट्वा नारायणं देवं स गच्छेच्छिवमन्दिरम् ।
कल्पकोटिशतं देवि नरो मम पुरे वसेत् ॥२२॥

हे देवि ! जो मनुष्य श्रीत्रियुगीनारायण विष्णु के दर्शन करके शिवमन्दिर केदारनाथ में जाता है, वह मनुष्य सौ करोड़ कल्पपर्य्यन्त मेरे पुर में निवास करता है ॥ २२ ॥

ततस्त्रिविक्रमातीरे ख्यातं जलमयपत्तनम् ।
यत्र गत्वा महादेवि पूजितोऽहं जले शिवे॥२३॥

उस त्रिविक्रमा के तीर में (सोद्धारा से ऊपर वासुकी गंगा के तट पर) जलमय नगर प्रख्यात है, जिसमें जाकर हे महादेवि ! जलाशय के शिव में मैं पूजित हुआ ॥ २३ ॥

तत्रैव मम लिंगं वै जलेश्वर इति स्मृतम् ।
यद्दर्शनान्नरो याति शिवलोके न संशयः॥२४॥

उस जलमय स्थान में जलेश्वर नाम करके हमारा लिंग है जो मनुष्य उसका दर्शन करे तो वह शिवलोक को प्राप्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं ॥ २४ ॥

तदादीदं महादेवि जातं जलमयपत्तनम् ।
पुण्यान्येव जलान्यत्र योजनायामविस्तृते २५

हे महादेवि ! जब से मैं जलेश्वर यहाँ प्रकट हुआ हूं, तबसे यह जलमय पत्तन हुआ है, यहां एक योजन की लम्बाई चौड़ाई में पुण्यदायक जल है ॥ २५ ॥

अत्र स्थित्वा सप्तरात्रं जपन्वै ध्यानतत्परः ।
सिद्धो भवति पूतात्मा यथाहं मम वल्लभे ॥२६॥

हे पार्वति ! जो मनुष्य यहाँ सात रात्रि तक जप करता हुआ ध्यानतत्पर होता हुआ अनुष्ठान करता है, वह निश्चय करके पवित्रात्मा तथा हमारे सदृश सिद्ध हो जाता है ॥ २६ ॥

तत्रैव च नदी रम्या सर्वपापप्रशोषिणी ।
दक्षिणे हरिदा नाम्ना स्नानेऽनन्तफलप्रदा २७

हे देवि ! उस त्रियुगीनारायण तीर्थ से दक्षिण की तरफ हरिदा (घट्टुड़ा) नाम की एक रमणीक नदी है, वह सम्पूर्ण पापों के नाश करनेवाली है और स्नान करने से अनन्त पुण्य फल देनेवाली है ॥ २७ ॥

श्रीविष्णोर्नित्यसान्निध्यं यद्गेहे पुस्तकं त्विदम् ।
पठनाच्छ्रवणाच्चापि वाजपेयफलं लभेत् ॥२८॥

जिस मनुष्य के घर में यह त्रियुगीनारायण माहात्म्य की पुस्तक रहती है, वहाँ सदैव विष्णु भगवान् का वास रहता है और इस माहात्म्य के पढ़ने अथवा सुनने से वाजपेय यज्ञ का फल मिलता है ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे केदारखण्डे श्रीत्रियुगीनारायणमाहात्म्ये ज्योतिर्विजयानन्दशर्मात्मजकुलानन्दशर्मस्वयंप्राकिकृतायां भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ गौरीकुण्ड-माहात्म्यं प्रारभ्यते

त्रिगव्यूतौ मम स्थानाद्दक्षिणे शृणु तीर्थकम्।
गौरीतीर्थमिदं ख्यातं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ १ ॥

हे पार्वति ! मेरे स्थान केदार से नीचे छः कोश (सात मील) पर दक्षिण की ओर जो तीर्थ है, उसे तुम श्रवण करो कि वह सम्पूर्ण सिद्धियों को देनेवाला गौरीतीर्थ (गौरीकुण्ड) नाम से प्रख्यात तीर्थ है ॥ १ ॥ के० ४२ अ० ॥

यत्र त्वया महेशानि मन्दाकिन्यास्तटे पुरा।
ऋतुस्नानं कृतं तद्धै गौरीतीर्थमिति स्मृतम् ॥ २ ॥

हे महेशानि ! उसी स्थान में मन्दाकिनी नदी के तट पर जहाँ तुमने पहिले ऋतुस्नान किया था निश्चयपूर्वक उसी स्थान को गौरीतीर्थ करके जानना चाहिए ॥ २ ॥

महासेनस्य चोत्पत्तौ विस्मृतं किं त्वयानघे।
तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि येन तज्ज्ञायते शुभम् ३ ॥

हे अनघे ! क्या तुम भूल गई हो वह तो तुम्हारा कार्त्तिकेय की उत्पत्ति का समय प्रथम ऋतु स्नान स्थान है, अब उस स्थान के चिह्न को मैं तुम्हारे पास कहता हूँ, जिससे वह कल्याण-दायक स्थान अच्छी तरह जाना जावे ॥ ३ ॥

कटूष्णं तु जलं तत्र सिन्दूराभा तु मृत्तिका।
तत्स्थानं देवदेवेशि न त्यजामि कदाचन ॥ ४ ॥

हे देवदेवेशि ! उस स्थान में एक कुण्ड पर बड़ा गरमी

जल है और दूसरे कुण्ड में कुछ ठंडा जल है और सिन्दूर के रंग की मट्टी है वह स्थान मेरा इतना प्रिय है कि मैं उसे कभी नहीं छोड़ता हूँ ॥ ४ ॥

तत्र गौरीश्वरत्वेन ख्यातोऽहं शिवलोकदः।
स्नानं करोति यस्तत्र मृत्तिकां शिरसा वहेत् ॥५॥

वहाँ मैं शिवलोक की प्राप्ति देनेवाला गौरीश्वर (उमा-महेश्वर) नाम से प्रख्यात हूँ, जो यात्री उस गौरीतीर्थ में स्नान को करता है और उस सिन्दूर सी रंगवाली मृत्तिका को शिर पर लगाता है ॥ ५ ॥

स वै मम प्रियतरो यथा त्वं मम वल्लभा।
अत्र यद्वै कृतं कर्म तद्वै कोटिगुणं भवेत् ॥ ६ ॥

वह मेरा अत्यन्त प्यारा हो जाता है, जैसी कि तुम मेरी प्यारी हो और इस गौरीतीर्थ में जो कुछ भी कर्म किया जाता है, उसका फल कोटि गुणा अधिक होता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ६ ॥

स्नानमादौ प्रकुर्वीत शीतकुण्डे विचक्षणः।
ततस्तप्तोदकेनैव स्नानं कुर्य्यात्सचैलकम्।
तर्पणादिकश्राद्धेन पितृन्सन्तर्पयेत्पुमान् ॥७॥

हे देवि ! बुद्धिमान् यात्री प्रथम ठण्डकुण्ड (शिरसोल्या कुण्ड) में स्नान को कर उपरान्त उन्हीं स्नान के वस्त्रों से तप्तकुण्ड (गर्मकुण्ड) में भी स्नान को करे। स्नानान्तर्गत तर्पणादिक श्राद्ध को करने से अपने पितरों को सन्तर्पित करे ॥ ७ ॥

तस्माद्दक्षिणतो देवि गोरक्षाश्रमतीर्थकम् ।
यत्र सिद्धो महादेवि गोरक्षो वसतेऽनिशम् ८

हे महादेवि ! तिस गौरीकुण्ड से दक्षिण भाग में (गंगा पार) गोरक्षाश्रम (गोरखडिब्बी) नाम का तीर्थ है, जहाँ गोरक्षनाथ नाम का सिद्ध नित्य प्रति निवास करता है ॥ ८ ॥ के० ४२ अ० ॥

तत्र चिह्नं प्रवक्ष्यामि शृणु पुण्यतमस्थलम् ।
महातप्तजलं तत्र वर्तते सर्वदैव हि ॥ ९ ॥

उसके चिह्न को भी मैं तुम्हारे पास कहता हूँ, एकाग्र चित्त से सुनो कि वह पुण्य को देनेवाला जो तीर्थ है, उसमें हमेशा बड़ा गर्म जल रहता है ॥ ९ ॥

तत्र स्थित्वा सप्तरात्रं जपन्वै शिवमुत्तमम् ।
सिद्धो भवति देवेशि यथा गोरक्ष उत्तमः॥१०॥

हे देवेशि ! उस गोरक्षाश्रम तीर्थ में जो मनुष्य सात रात्रि तक निवास करता है और एकाग्र चित्त से शिवमंत्र 'ॐ नमः शिवाय" को जो जपता है वह गोरक्षनाथजी के समान सिद्धि को प्राप्त होकर सिद्ध ही हो जाता है ॥१०॥

गौरीतीर्थापरे भागे क्रोशे परमदुर्लभम् ।
वैनायकं तथा द्वारं संस्थितं वै संस्थितः शिवे ११॥

हे पार्वति ! गौरीतीर्थ से दक्षिण दिशा की ओर एक कोश (दो मील दो फर्लांग ४० गज़) की दूरी पर परम दुर्लभ द्वार देश में स्थित वैनायक तीर्थ है ॥ ११ ॥ के० ४२ अ० ॥

गणेशस्तावकः पुत्र अङ्गरागेण यः कृतः ।
स्थापितो द्वारि देवेशि त्वया च स्नाय्यमानया १२

हे देवेशि ! तुम्हारा पुत्र गणेश जो तुमने अपने अंगमल से (गौरीक्षेत्र में रजोमुक्त स्नानान्तर्गत पुरुष जाति रोकने के लिये) पैदा किया था वह तुमने केदारक्षेत्र के दरवाजे (मुण्डकट्या) में अपने स्नान के रक्षार्थ स्थापन किया था॥१२॥

मया यस्य शिरः छिन्नं पतितं शिवक्षेत्रके ।
प्रसन्नेन मया देवि पुनःकारिवरं शिरः ॥ १३ ॥

हे देवि ! उस समय मैंने (गोत्रहत्या तथा ब्रह्महत्या से दूषित पाण्डवों को अपना दर्शन देना उचित न जानकर व्याकुल होकर) गणेश का शिर भीतर न आने देने के क्रोध से काट लिया था जो शिर शिवक्षेत्र "काशी" में पड़ा। पीछे मैंने प्रसन्न होकर श्रेष्ठ हाथी का शिर ॥ १३ ॥

संयोजितं तदंगे तु ततो गजमुखोऽभवत् ।
सम्पूज्य तं गणेशं तु नानानैवेद्यद्रव्यकैः ॥
विना सम्पूजनात्तस्य विघ्नभीर्जायते नृणाम् १४

उस तुम्हारे पुत्र के धड़ पर जोड़ के जिलाया था, तब से गणेश गजानन करके प्रख्यात हुआ। केदारक्षेत्र जानेवाला यात्री उस गणेश को अनेक प्रकार के नैवेद्य आदि से पूजन करे। विना उस गणेश के पूजन किये मनुष्यों को विघ्नों का भय होता है इसलिए प्रथम उस शिरकटा गणेश का पूजन दर्शन करना योग्य है ॥ १४ ॥

गौरीतीर्थादूर्ध्वभागे पर्वते सौम्यदिक्स्थिते ।
चीरवासा भैरवस्तु क्षेत्रं रक्षति मामकम् १५ ॥

हे देवि ! उस गौरीतीर्थ से उत्तर दिशा की तरफ़ (दो मील की दूरी पर) ऊपर पर्वत में चीरवासा (चीर-वस्त्रा) नाम का भैरव मेरे केदारक्षेत्र की रक्षा के निमित्त वास करता है ॥ १५ ॥ के० ४२ अ० ॥

तस्मै चीरादिकं दत्त्वा सर्वपुण्यं लभेन्नरः ।
अन्यथा तत्फलं सर्वं हरते भैरवः शिवः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सम्पूज्य भैरवं विशेत् १६

उस भैरव को चीर (वस्त्र) नैवेद्य आदि देने से समस्त पुण्य यात्री को मिलते हैं। जो भैरव को चीर आदि न देके आजाता है, उसके यात्रा का समस्त फल वह चीरवासा भैरवरूपी शिव हरण कर लेता है । अतएव हर एक यत्न से उस चीरवासा भैरव को गन्ध पुष्प धूप वस्त्रादिक से पूजन करे ॥ १६ ॥

* श्रीकेदारनाथजी की स्तुति *

हरिद्वार से १४३ मील है ।

रचित पाण्डव रुचिर मन्दिर गिरि हिमालय शोभितम् ॥
निकट मन्दाकिनि बहत केदारनाथ महेश्वरम् ॥ १ ॥
भगतजन उद्धारकारण गिरि हिमालय उद्भवम् ।
लिंग ज्योतिर्लिंग नाम केदारनाथ महेश्वरम् ॥ २ ॥
पवन शीतल मन्द निर्मल हरत मुनिजनमानसम् ।
लीन आनन्द होत मन केदारनाथ महेश्वरम् ॥ ३ ॥

जयति जय केदार हर शिव करत जय धुनि देवतम् ।
बसत तैंतिस कोटि सुर केदारनाथ महेश्वरम् ॥ ४ ॥
वृषभ वाहन सोह नन्दी अरु भुकुंडा भैरवम् ।
कुण्डरेतों हंस जहँ केदारनाथ महेश्वरम् ॥ ५ ॥
तीर्थ स्वर्गारोहिणी अरु मुक्तिदान महापथम् ॥
मोक्ष दीनो पाण्डुसुत केदारनाथ महेश्वरम् ॥ ६ ॥
विषुवती से होत पूजा कार्तिकी यमदूजकम् ।
मुक्ति पावत दरश करि केदारनाथ महेश्वरम् ॥ ७ ॥
स्तुति पठत जो प्रात नित नित लभत चार पदारथम् ।
द्विज कुलानंद शरण शिव केदारनाथ महेश्वरम् ॥ ८ ॥

श्रीकेदार-माहात्म्यप्रारम्भः ।

पार्वत्युवाच ।

कथयस्व महादेव विस्तरान्मम क्षेत्रकम् ।
केदारं नाम यत्प्रोक्तं स्वर्गमोक्षप्रदायकम् ॥ १ ॥

श्रीपार्वती महादेवजी से पूछने लगीं कि हे देवों में श्रेष्ठ देव ! जो आपने स्वर्ग और मुक्ति देनेवाला केदार नामक क्षेत्र कहा है, कृपया उसका वर्णन विस्तार से कहिये॥ १॥ के०४१अ०॥

कानि कानि च तीर्थानि वर्तन्ते तत्र नायक ।
किंपुण्यं किंफलं चात्र स्नानदानैर्महेश्वर: । २ ।

हे महेश्वर! वहाँ कौन कौन से तीर्थ वर्तमानहैं और वहाँ स्नान दान, श्राद्ध करने से किस पुण्यके फल की प्राप्ति होती है ॥ २ ॥

कथमेतन्महज्जातं तीर्थानामुत्तमोत्तमम् ।

एतत्सर्वं महादेव प्रियायै कथय प्रभो ॥ ३ ॥

यह केदारक्षेत्र सब तीर्थों से किस प्रकार उत्तम है, हे प्रभो! वह सम्पूर्ण अपनी प्रिया के प्रति कहो ॥ ३ ॥

ईश्वर उवाच।

इदं क्षेत्रं तु यत्प्रोक्तं मया देवि तवाधुना।
न त्यजामि कदाचिद्वै त्वत्तः प्रियतरं प्रिये॥ ४ ॥

शिवजी बोले—हे देवि! यह केदारक्षेत्र जो मैंने इस समय तुझसे कहा, इसको मैं कभी नहीं छोड़ता हूँ, हे प्रिये! यह तुझको तुझसे प्यारा है ॥ ४ ॥

पुरातनो यथाहं वै तथा स्थानमिदं किल।
यदा सृष्टिक्रियायां च मया वै ब्रह्ममूर्तिना ॥५॥

हे पार्वति! जैसा सबसे प्राचीन मैं हूँ ऐसा ही यह केदार क्षेत्र भी सब क्षेत्रों से प्राचीन है, जब ब्रह्ममूर्ति धारण करके मैंने सृष्टि रची थी ॥ ५ ॥

स्थितमत्रैव सततं परब्रह्मजिगीषया।
तदादिकमिदं स्थानं देवानामपि दुर्लभम् ॥६॥

तब मैंने परब्रह्म जीतने की इच्छा करके इस क्षेत्र में निरंतर स्थिति की थी, उसी दिन से लेकर यह स्थान देवताओं को भी दुर्लभ है ॥ ६ ॥

नन्दी भृंग्यादयः सर्वे द्वारदेशे प्रतिष्ठिताः।
ब्रह्माद्यास्त्रिदशाः सर्वे न जानन्ति मम स्थलम् ७

इस केदार (मन्दिर) के दरवाजे पर नन्दी शृंगी आदि गण स्थित रहते हैं, यह मेरा ऐसा रहस्य स्थल है कि जिसको ब्रह्मादि समस्त देवता भी नहीं जानते ॥ ७ ॥

यया त्वया यत्र देशे क्रीडितं विस्मृतं किल।
इदमेव महत्स्थानं सुगोप्यं सर्वजन्तुषु ॥ ८ ॥

जिस तुझ पार्वती ने इस देश (केदार) में पहले क्रीड़ा करी थी क्या तू भूल गई है, वह यही महा स्थानहै जो समस्त जीवों में गुप्त रखने के योग्य है ॥ ८ ॥

मृतो यत्र महादेवि शिव एव न संशयः।
धन्यास्ते पुरुषा लोके पुण्यात्मानो महेश्वरि ९

हे महेश्वरि! जिस केदारनाथ में मरकर यात्री निःसन्देह शिव ही हो जाता है और जो केदार में शरीर छोड़ते हैं वे पुरुष पुण्यात्मा जानने ॥ ९ ॥

ये वदन्त्यपि केदारं गमिष्याम इति क्वचित्।
देवेशि पितरस्तेषां त्रिशतं कुलसंयुताः ॥ १० ॥

हे देवेशि! जो यात्री इस प्रकार कहते हैं कि हम कभी न कभी केदारनाथ को जायँगे उनके पितर तीन सौ कुल समेत ॥ १० ॥

गच्छन्ति शिवलोके तु सत्यं सत्यं न संशयः।
यथा सतीनां त्वं चैव देवानां च यथा हरिः ॥ ११ ॥

शिवलोक में जाते हैं यह सत्य सत्य है इसमें सन्देह नहीं, जिस प्रकार सतियों में तुम और देवताओं में हरि श्रेष्ठ हैं ॥ ११ ॥

सरसां सागरो यद्वत्सरितां जाह्नवी यथा ।
पर्वतानां यथायं वै योगिनां याज्ञवल्क्यकः १२॥

और सरोवरों में समुद्र, नदियों में भागीरथी, पर्वतों में यह हिमालय और योगियों में याज्ञवल्क्य श्रेष्ठ हैं ॥ १२ ॥

भक्तानां च यथा देवि नारदो भक्त ईरितः ।
शिलानां च यथा शालग्रामशिला तु वैष्णवी ॥

तथा हे देवि ! भक्तों में जैसे नारदमुनि कहा है और शिलाओं में जैसे शालिग्राम की विष्णुशिला श्रेष्ठ है ॥ १३ ॥

अरण्यानां यथा प्रोक्तं बदर्यारण्यसंज्ञितम् ।
धेनूनां च यथा कामधेनुर्वै परिकीर्तिता ॥१४॥

अरण्यों में जैसा बदरिकारण्य श्रेष्ठ कहा है और धेनुओं में जैसे कामधेनु श्रेष्ठ कही है ॥ १४ ॥

मनुष्याणां यथा विप्रो विप्राणां ज्ञानदो यथा ।
स्त्रीणां पतिव्रता यद्वत्प्रियाणां पुत्र एव च ॥१५॥

मनुष्यों में जैसे ब्राह्मण श्रेष्ठ है और ब्राह्मणों में भी ज्ञान देनेवाला श्रेष्ठ है, स्त्रियों में पतिव्रता और प्रिय वस्तुओं में जैसे पुत्र श्रेष्ठ है ॥ १५ ॥

पदार्थानां यथा स्वर्णं मुनीनां च यथा शुकः ।
सर्वज्ञानां यथा व्यासो देशानामयमेव च १६

पदार्थों में जैसे सुवर्ण, मुनियों में जैसे शुकदेवजी, सर्वज्ञों में जैसे व्यासदेव और देशों में यह केदारखण्ड देश श्रेष्ठ है ॥ १६॥

नराणां च यथा राजा सुराणां वासवो यथा ।
वसूनां धनदो यद्वत्पुरीणां मामकी यथा ॥१७॥

मनुष्यों में जैसे राजा श्रेष्ठ है, देवताओं में इन्द्र, वसुओं में कुबेर, पुरियों में जैसी मेरी (काशी) पुरी श्रेष्ठ है ॥ १७ ॥

रम्भा चाप्सरसां यद्वद्गन्धर्वाणां च तुम्बुरुः ।
क्षेत्राणां तथा प्रोक्तं क्षेत्रं केदारसंज्ञितम् ॥१८॥

अप्सराओं में जैसे रम्भा, गन्धर्वों में जैसे तुम्बुरु श्रेष्ठ हैं इसी प्रकार क्षेत्रों में यह केदारक्षेत्र (केदारतीर्थ) श्रेष्ठ है ॥१८॥

शृणु देवि पुरा वृत्तं व्याधस्यैणस्य चैव हि ।
मृगहन्ता यथा व्याधो ग्रामान्ते विकरालकः १९

हे देवि ! अब तुम से एक व्याध और मृग का पूर्व वृत्तान्त कहते हैं सो सुनो भयानक आकृतिवाला मृगघाती एकव्याध ग्राम के किनारे पर निवास करता था ॥ १९ ॥

मृगमांसाशनो नित्यं विक्रेता सर्ववस्तुनः ।
एकदा स महान् व्याधो मृगं हन्तुं गतो वने २०

जो कि नित्य मृगों का मांस खाने तथा उनके मांस चर्म आदि सब वस्तु बेचनेवाला था । एक समय वह महाव्याध मृग मारने को वन में गया ॥ २० ॥

हतास्तत्र महादेवि बहवो विविधा मृगाः ।
एवं हनन्मृगान् व्याधो ययौ केदारतीर्थके २१ ॥

हे महादेवि ! वहाँ जाकर उसने अनेक जाति के बहुत मृग

मारे, इस प्रकार मृगों को मारता हुआ वह व्याध केदारक्षेत्र में चला गया ॥ २१ ॥

गच्छतस्तस्य देवेशि वने मुनिगणान्विते ।
व्यदृश्यत मुनिश्रेष्ठो नारदो रणयन् गिरम् २२

हे देवेशि ! चलते-चलते उसको मुनिगणों से युक्त उस वनमें वीणा बजाते हुए मुनियों में श्रेष्ठ नारदजी दिखाई दिए ॥ २२॥

एतस्मिन्नन्तरे सोऽपि व्याधो वै हृष्टमानसः ।
योऽयं गच्छति स्वर्णात्मा दिव्यरूपधरो मृगः २३

उसी समय वह व्याध भी प्रसन्न मन हो गया। दिव्यरूपी सोने का यह जो मृग जाता है ॥ २३ ॥

एनं हत्वा स्वर्णमृगं ह्यहं स्वर्णमयो भवे ।
इति सञ्चिन्त्य मनसि व्याधः परमविस्मितः २४

इस सोने के मृग को मारके मैं भी सुवर्णमय (धनाढ्य) हो जाऊँगा, इस प्रकार विचार कर वह व्याध अत्यन्त विस्मित होकर ॥ २४ ॥

धनुः सज्जं चकाराशु बाणं संधाय कार्मुके ।
यावन्निहन्ति तमृषिं तावदस्तंगतो मुनिः ॥२५॥

शीघ्रतापूर्वक धनुष में बाण धारण करके ज्योंही ऋषि को मारने को उद्यत हुआ इतने में ऋषि व्याध की दृष्टि से गुप्त होगया ॥ २५ ॥

इति तत्परमाश्चर्यं दृष्ट्वा व्याधोऽतिविस्मितः ।
यावद्गच्छति तत्स्थानं ददर्श दर्दुरं बिले ॥ २६॥

इस प्रकार उस परम आश्चर्य को देखके व्याध अति विस्मित हुआ, जब आगे को चला तो बिल में एक मेंढक देखा ॥ २६ ॥

सर्पेण ग्रस्यमानं वै महाकायेन सत्वरम् ।
यावद् ग्रसति मण्डूकं सर्पःकालात्मको ह्ययम् २७

और बड़ा भारी एक सर्प उसे शीघ्र निगल रहा है, इतने में वह काल समान बड़े सर्प ने मेंढक को खाया ॥ २७ ॥

तावद् बभूव मण्डूको नागयज्ञोपवीतिकः ।
अर्द्धचन्द्रधरः शीर्षे जटाटव्या विराजितः २८

इतने में वह मेंढक ऐसे रूप का बना कि जिसका सर्प का यज्ञोपवीत पहना है, शिर में आधा चन्द्रमा धारण किया एवं जटाजूट से विराजित है ॥ २८ ॥

कैलासाद्रिसमाभासो नृत्यद्गणविराजितः ।
त्रिशूली नीलकंठो वै हस्तिचर्मांबरो विभुः २९॥

और कैलास पर्वत के समान कान्तिवाला गणों के साथ नृत्य करते हुये त्रिशूलधारी हाथी का चर्म धारण किये हुये नीलकंठ शिव होगया ॥ २९ ॥

इति तत्परमाश्चर्यं दृष्ट्वा वै व्याधपूरुषः ।

किमेतद्धै कथं जातो मंडूकः सर्पवेष्टितः ॥३०॥

इस दृश्य से वह व्याध आश्चर्ययुक्त होकर बोला कि इस सर्प से पकड़ा हुआ यह मेंढक इस प्रकार कैसे हुआ ॥ ३० ॥

रूपं कस्मादिदं जातं मंडूकस्यान्यदेहिनः।
किं वा स्वप्नमहं मन्ये जाग्रतो मे कथं भवेत् ३१

यह रूप मेंढक का हुआ है वा किसी अन्य शरीरधारी का अथवा मैं स्वप्न देखता हूँ किन्तु मैं जागृत अवस्था में हूं, इस से स्वप्न कैसे हो सकता है ॥ ३१ ॥

भ्रमो मे हि कथं जातः स्वस्थोस्मि यत एव हि।
अथ चेदं कथंचिद्धै भूतोपद्रवकं किमु ॥३२॥

मुझे भ्रम किस प्रकार हुआ मैं तो सावधान हूं अथवा यह भूतमाया है, कुछ समझ में नहीं आता ॥ ३२ ॥

सन्निकर्षमतिर्मेद्य वर्तते विकृतिर्यतः।
किं करोमि क गच्छामि वनेऽस्मिन्भूतसेविते ३३

व्याध विचारने लगा कि आज सर्व कार्य विपरीत दिखाई देते हैं। मेरी मृत्यु नजदीक आई है। भूतों से सेवित इस वन में क्या करूँ और कहां जाऊँ ॥ ३३ ॥

को मे रक्षामिदानीं हि करिष्यति महावने।
पश्यतो मे हि मंडूको विकृतिं वै कथं गतः ।३४।

इस समय इस महावन में मेरी कौन रक्षा करेगा मेरे देखते-देखते मेंढक कैसे विकार को प्राप्त हुआ ॥ ३४ ॥

इति चिन्तासमाविष्टमना व्याधो हि तत्क्षणात्।
पलायनपरो जातो महेशि वनतो यदा ॥ ३५॥

हे महेशि ! इस प्रकार चिन्तायुक्त मन में उसी समय वह व्याध जब कि भागने को हुआ ॥ ३५ ॥

तावद्ददर्श व्याघ्रेण हन्यमानं मृगं किल।
पुष्टांगं सुन्दरांगं च महाव्याधो भयातुरः ॥३६॥

उसी समय पुष्ट और सुन्दर अंगवाले मृग को सिंह के द्वारा मारे जाते देखा तब तो वह व्याध भय से और भी घबराया ॥ ३६ ॥

तमेव हन्यमानं च मृगं वै शिवरूपिणम्।
पंचवक्त्रं त्रिनेत्रं च व्यालयज्ञोपवीतिनम्।३७।

और देखा कि जिस मृग को वाघ मार रहा था वह पाँच मुख तीन नेत्रवाला सर्प का यज्ञोपवीत धारण करनेवाला शिवरूप होगया ॥ ३७ ॥

हन्ता यो देवदेवेशि मृगराट् सोऽपि मारितः।
महाव्याधेन केनापि बलीवर्दो बभूव ह ॥३८॥

हे देवदेवेशि ! जो वाघ उस मृग को मार रहा था उसे भी उसी क्षण एक किसी महा व्याध ने मार डाला। मरने के समय वह व्याघ्र बड़ा जवान बैल बन गया ॥ ३८ ॥

आरुरोह वृषे तस्मिन् स वै पूर्वहतो मृगः।
शिवरूपधरः साक्षात्पश्यतस्तस्य सुंदरि।३९।

जो मृग पहिले बाघ ने मारा था हे सुन्दरि ! वह उस नवीन बैल (जो पहिले बाघ था) पर चढ़ के व्याध के देखते देखते साक्षात् शिव का रूप होगया ॥ ३६ ॥

इति तत्परमाश्चर्यं दृष्ट्वा व्याधोऽतिविस्मितः ।
चिन्तयामास बहुशः किमदं किमिदं त्वहो ॥४०॥

इस प्रकार उस आश्चर्यजनक कृत्य को देखकर व्याध बड़े विस्मय में आया । यह क्या है, यह क्या है, ऐसा आश्चर्य मान के बहुत चिंता में प्राप्त हुआ ॥ ४० ॥

पुलकांकितसर्वांगो विस्मयाविष्टमानसः ।
पुनर्ददर्श देवेशि तमेव नारदं मुनिम् ॥ ४१ ॥

मन आश्चर्य में होगया, सर्वांग में रोमांच उठ आये, हे देवेशि ! इतने में फिर उसी नारद मुनि को देखा ॥ ४१ ॥

तं दृष्ट्वा मनुजाकारं वने तस्मिन्भयावहे ।
श्रुत्वा तु तन्मुखाद्वृत्तं तत्रत्यं मम वल्लभे ॥४२॥

हे प्रिय ! उस भयानक वन में मनुष्य शरीरधारी नारदजी को देखा उनके मुखसे वहां का मेरा वृत्तान्त सुना ॥ ४२ ॥

व्याधः साधुरसाधुश्च वनं साधुपरं महत् ।
इति श्रुत्वा तु स व्याधो बभाषे नारदं मुनिम् ४३

नारदजी बोले कि व्याध साधु भी है और असाधु भी है किंतु वन परम साधु है इस प्रकार सुनकर वह व्याध नारद ऋषि से बोला ॥ ४३ ॥

कथं साधुरहं ब्रह्मन्नसाधुश्च कथं वनम्।
साधुसाध्विति यत्प्रोक्तं त्वया किं तद्वदस्व मे ४४

हे ब्रह्मन् नारदमुने ! मैं किस प्रकार साधु हूं और असाधु हूं और वन किस प्रकार श्रेष्ठ हैं। तुमने साधु और असाधु जो कहा है सो किस प्रकार से कहा है वह सब वृत्तान्त मुझसे कहो ॥ ४४ ॥

व्याधेरितं तु तच्छ्रुत्वा विहस्य नारदोऽब्रवीत्।
धन्योऽसि लुब्धकश्रेष्ठ यत्त्वया तीर्थमुत्तमम् ४५

व्याध के वचन को सुनकर नारदजी हँसकर बोले कि हे लुब्धकश्रेष्ठ ! तुम धन्य हो जो तुमने इस उत्तम तीर्थ में ॥ ४५ ॥

आगतं तादृशं चैव दृष्टं वै शुभदर्शनम्।
तस्मादुक्तं च मे साधुस्त्वमसाधुश्च तच्छृणु ४६

आकर शिवजी के सुंदर रूप का दर्शन किया इस कारण तुम्हें साधु कहा, और जैसे तुम असाधु हो सो भी कहता हूं सुनो ॥ ४६ ॥

यस्मादिदं त्वया व्याध ज्ञानं नेति शुभं परम्।
यस्यमाहात्म्यतःशीघ्रं तिर्यग्योनिगतोध्रुवम् ४७

क्योंकि तुममें ज्ञान नहीं है इस कारण तुम असाधु हो यह वन इस कारण शुभ है कि जिसके माहात्म्य से शीघ्र ही पशुयोनि को प्राप्त हुआ भी ॥ ४७ ॥

अवाप्य शिवतां चैव पश्यतस्ते क्षणात्तथा।

इति तत्परमाश्चर्यं रूपं तद्वचनं प्रिये ॥ ४८ ॥

तुम्हारे देखते-देखते क्षणमात्र में शिवरूप होगया, हे प्रिये ! इस प्रकार उस परम आश्चर्यरूप और नारदजी के वचन को ॥ ४८ ॥

श्रुत्वा व्याधो महाभागः प्रणनाम भुवि क्षणात् ।
धन्योऽस्मिकृतकृत्योऽस्मिमुनेत्वद्दर्शनादहम् ४९

सुनकर वह महाभाग व्याध पृथिवी में झुककर प्रणाम करने लगा और कहने लगा कि हे मुने ! मैं आपके दर्शन से धन्य हूं और कृतकृत्य हूं ॥ ४९ ॥

योऽहं तव मुखाम्भोजनिःसृतं सुकथामृतम् ।
पिबामि मुनिशार्दूल त्राहि मां भवसागरात् ५०

जिससे कि मैं आपके मुख से निकला हुआ कथारूपी अमृत पान कर रहा हूं, हे मुनिश्रेष्ठ ! संसार-सागर से मेरी रक्षा करिये ॥ ५० ॥

पापोऽहं मुनिहन्ताऽहं हिंसकोऽहं दुरासदः ।
तारयेऽहं महाभाग कथमेतादृशी गतिः ॥५१॥

मैं पापी हूं, मुनियों का मारनेवाला हूं, जीवहिंसक हूं, दुष्ट हूं, हे महाभाग नारदजी ! मेरा संसार से उद्धार कैसे होगा और मेरी इन मृग मेंढकादिकों के समान गति कैसे ॥५१॥

भवेन्मे मुनिशार्दूल तद्वदस्व कृपान्वित ।
उवाच नारदस्तं वै अत्रैव निवसत्विति ॥५२॥

होगी। हे मुनिश्रेष्ठ! सो कृपा करके मुझसे कहो। तब नारदजी ने कहा, तुम यहीं निवास करो तब तुम्हारी निष्कृति होगी ॥ ५२ ॥

इत्युक्त्वान्तर्दधे देवि पश्यतस्तस्य वै प्रिये।
व्याधोऽपि निवसंस्तत्र ययौ वै परमां गतिम् ५३

हे देवि! इस प्रकार कहकर व्याध के देखते ही देखते नारद मुनि अंतर्धान हो गये और व्याध भी वहां केदारनाथ में रहकर परमगति (वैकुंठ) को प्राप्त हुआ ॥ ५३ ॥

इति तत्क्षेत्रमाहात्म्यं नाऽहं वर्षशतैरपि ॥
क्षमोऽस्मिवक्तुं सुश्रोणि शृण्वतोऽपि परां गतिम्

हे प्रिये! केदार तीर्थ का माहात्म्य इस प्रकार का है। पूरा कहने को मैं सौ वर्ष तक भी समर्थ नहीं हूं, जिसके सुनने से भी वैकुण्ठ वास मिलता है ॥ ५४ ॥

इति श्रीकेदारखण्डे शिवपार्वतीसंवादे केदार-माहात्म्ये प्रथमोऽध्यायः।

ईश्वर उवाच।

दक्षिणस्यां शिवे देवि रेतःकुण्डमिति श्रुतम्।
तत्पयःपानमात्रेण शिव एव न संशयः ॥ १ ॥

शिवजी बोले कि हे देवि! केदारमन्दिर के दक्षिण ओर रेतःकुण्ड "उदककुण्डी" विख्यात है, उसके जलपानमात्र से यात्री निःसन्देह शिव ही हो जाता है ॥ १ ॥

येन चिह्नेन तत्तीर्थं जायते शिवदायकम् ।
पारदं दृश्यते तत्र तज्जलं बुद्बुदायते ॥ २ ॥

हे पार्वति ! शिव की प्राप्तिवाला वह तीर्थ जिस प्रकार से जाना जाता है, वह यह है कि वहां पारा दिखाई देता है और जल ऊपर को उबलता है ॥ २ ॥

तस्य दर्शनमात्रेण नरो याति परां गतिम् ।
किं पुनर्देवदेवेशि तत्पाने नितरां शिवे ॥ ३ ॥

हे शिवे ! उस उदककुण्डी के दर्शनमात्र से मनुष्य परम गति को प्राप्त होता है और नित्य पान करने का तो कहना ही क्या है ॥ ३ ॥

मन्दाकिन्यास्तु सुतटे तीर्थानि शृणु पार्वति ।
तस्मादेव महातीर्थादधोदेशे शुभप्रदम् ॥ ४ ॥
शिवकुण्डमिति ख्यातं शिवलोकप्रदायकम् ।
योऽत्रोपोष्य सप्तरात्रं प्राणान्वै संत्यजेद्बुधः ॥ ५ ॥
शिवसायुज्यतामेति यतो धाराविनिःसृता ।
तदग्रे भृगुतुंगं वै पापिनामपि मुक्तिदम् ॥ ६ ॥

हे पार्वति ! मन्दाकिनी गंगाजी के तट (घाट) पर जो तीर्थ हैं, उनका वर्णन सुनो। हे देवि ! पूर्वोक्त उदककुण्ड से नीचे सुखप्रद तथा शिवलोक देनेवाला शिवकुण्ड है जो वहाँ सात दिन निराहार व्रत रखकर प्राण त्यागे वह शिवसायुज्य मुक्ति पाता है, और जहां से मन्दाकिनी गंगा की धारा

निकलती है वहां से ऊपर भृगतुंग नामक तीर्थ है जो पापियों को भी मुक्ति देता है ॥ ४ । ६ ॥

गोघ्नः कृतघ्नो विप्रघ्नो योऽपि विश्वासघातकः ।
श्रीशिलायां पतेद्यस्तु भृगुतुंगान्महोन्नतात् ७
प्राणांस्त्यजति देवेशि स परब्रह्मतामियात् ॥

गो तथा ब्राह्मण की हत्या करनेवाला और विश्वासघात करनेवाला भी जो महापापी बड़े ऊंचे भृगुतुंग से श्री शिला में गिरकर प्राण त्यागे तो हे देवेशि ! वह परब्रह्म स्वरूप हो जाता है ॥ ७ ॥

तस्मात्तीर्थादूर्ध्वभागे योजनद्वयसंमितम् ८
रक्तवर्णं जलं तत्र बुद्बुदाकारनिःसृतम् ।
इदं जलं परं गोप्यं न वदेद्दुष्टजन्तुषु ॥ ९ ॥
यस्य स्पर्शेन सर्वेऽपि धातवः स्वर्णतां प्रिये ।
यान्ति लोहादयो देवि सत्यं सत्यं न संशयः १०

उस भृगुतुंग तीर्थ से ऊपर की ओर दो योजन विस्तार का लाल रंगवाला जल है जो बुद्बुद के आकार में निकलता है हे देवि ! इस दिव्य तीर्थ को पापियों से न कहे, जिसके छूने से ही लोहा ताँबा आदि धातु निःसन्देह सत्य ही सुवर्ण हो जाते हैं ॥ ८ । १० ॥

इदं हिरण्यगर्भाख्यं तीर्थं परमदुर्लभम् ।
यस्य दर्शनमात्रेण नरो नारायणो भवेत् ।११।

इस तीर्थ का नाम हिरण्यगर्भ है और इसका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है। यदि कोई मनुष्य किसी प्रकार इसका दर्शन कर लेवे तो वह साक्षात् नारायणस्वरूप हो जाय ॥ ११ ॥

तस्मादुत्तरतो देवि स्फटिकं लिङ्गमुत्तमम् ।
यस्य वै पूजनात्सद्यःशिव एव न संशयः १२॥

हे देवि ! हिरण्यगर्भ तीर्थ से उत्तर की ओर स्फटिक का एक शिवलिंग है, जिसके पूजन करने से मनुष्य तत्काल शिवरूप हो जाता है ॥ १२ ॥

तस्मात्सप्तपदे पूर्वं वह्नितीर्थमिति स्मृतम् ।
तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि गदतो मे शृणु प्रिये १३
हिमान्तर्गलितं तद्वै जलं वह्निमयं प्रिये ।
पूजनं तस्य कर्त्तव्यं घृताक्ताहुतिभिस्तथा ।१४।
संतृप्तो जायते वह्निर्वरमिष्टं प्रयच्छति ।

हे प्रिये ! स्फटिक लिंग से पूर्व की ओर सात पद के अन्तर में वह्नितीर्थ है, मैं तुम्हें उसका चिह्न बताता हूं सुनो, वहां हिम (बर्फ़) के भीतर से अत्यन्त गरम जल निकल रहा है, उसमें घृतयुक्त हवन द्रव्य की आहुतियों से उसका पूजन करना चाहिये ऐसा करने से अग्नि प्रसन्न होकर उसे मन चाहा वर देता है ॥ १३ । १४ ॥

तत्र उत्तरतो देवि आश्चर्यं परमं शिवे ॥ १५॥
शैलाग्रंशिखरात्तत्र जलं पतति भूतले ।

तज्जलस्य कणा देवि मुक्ताश्चैव भवन्ति हि १६
तत्रैव भीमसेनेन पूजितोऽहं च मौक्तिकैः॥

हे शिवे! अग्नि तीर्थ से उत्तर की ओर एक परमाश्चर्य है कि पर्वत के ऊँचे शिखर से पृथ्वी पर जल गिरता है, उसके गिरने से जो जल के कण उठते हैं वे मोती होजाते हैं यह निश्चय है, हे देवि! यहीं भीमसेन ने मोतियों से मेरा पूजन किया था॥ १५। १६॥

मुक्ताविद्रुमजालानां हर्म्याणां च परंपरा १७
तेषु हर्म्येषु देवेशि गन्धर्वाप्सरसस्तथा।
गायन्ति परमीशानं हर्षेण परिपूरिताः॥१८॥

हे देवि! वहां मोती मूंगा आदि रत्नों के अनेक भवन बने हैं, जिनमें गन्धर्व तथा अप्सरा आदि आनन्दयुक्त होकर श्रीशिवजी का गायन करते हैं॥ १७। १८॥

तत्र यान्ति महादेवि पुण्यात्मानो महाधियः।
ततः परं महान् पन्था यत्र गत्वा न शोचति १९

हे देवि! वहाँ अति पुण्यात्मा पुरुष ही जा सकते हैं और वहां से आगे महापथ है, जहां जाकर प्राणी आवागमन से मुक्त हो जाता है॥ १९॥

तस्मिन्महापथे देवि घृतपायसकर्दमाः।
स्वर्णभूमी रत्नमयी स्वर्णपक्ष्युपशोभिताः।२०।

उस महापथ में घी और पायस की बहुतायत से उनका

क्रीड़ा‌ड़ बना हुआ है तथा वहां की भूमि सुवर्ण तथा रत्नों की है, वहां के पक्षी सुवर्ण के ही हैं ॥ २० ॥

वृक्षाः स्वर्णमयास्तत्र प्रवाललतिकावृताः ।
अनेके च महागृद्धाः पन्नगाशनतेजसः ॥ २१ ॥
योजनायामविस्तारा महाव्यालाश्च सर्वशः ।
सप्तप्राकारसंयुक्तं मम धाम महेश्वरि ॥ २२ ॥

और वहां के वृक्ष भी सुवर्ण के हैं और वे विद्रुममय (मूँगों की) लताओं से युक्त हैं, वहाँ अनेक गीध गरुड़ के सदृश तेजस्वी हैं। योजन परिमित लम्बे अनेक सर्प भी वहां हैं। हे देवि! वहीं मेरा सात किलाओं से युक्त बड़ा विशाल मंदिर है ॥ २१ । २२ ॥

यत्र ब्रह्मादयो देवि मां हि सेवन्ति नित्यशः ।
महाभैरवहस्तस्थदण्डेन कृतशासनाः ॥ २३ ॥
भूतवेतालप्रेताश्च कूष्माण्डा जृम्भकास्तथा ।
नन्दीभृंग्यादयश्चैव क्रीडन्ति सुखसंवृताः २४

हे देवि! जिसमें ब्रह्मादि देवतागण मेरी सेवा करते हैं और वहां महाभैरव जिनका दण्ड से शासन करता है ऐसे भूत, प्रेत, वैताल, कूष्मांड, जृम्भक, नन्दी, भृंगी आदि सुखपूर्वक क्रीड़ा करते हैं ॥ २३-२४ ॥

अहं महापथे नित्यं संस्थितो मम वल्लभे ।
अस्मात्स्थानात् प्रियतरं नास्ति देवेशि मे क्वचित्

हे प्रिये ! मैं सदा महापथ में निवास करता हूं और इससे उत्तम मुझे कोई भी दूसरा स्थान प्रिय नहीं है ॥ २५ ॥

यः कश्चिन्मानवो भक्त्या एवं वदति नित्यशः ।
महापथं गमिष्यामि प्राणांस्त्यक्ष्यामि तत्र वै ।
सोऽपि मे देवदेवेशि प्रियात्प्रियतरोऽस्ति वै २६

हे देवि ! जो कोई मनुष्य भक्तिपूर्वक मैं महापथ जाऊंगा और वहां अपने प्राणों का विसर्जन करूँगा, ऐसी कामना भी मन में करता है चाहे वह वहाँ न जा सके तो वह भी मेरा अत्यन्त प्यारा है ॥ २६ ॥

किं पुनर्मानवो लोके सर्वसंगविवर्जितः ।
मां न्यस्य हृदि च स्वीये गच्छेद्वै मम मन्दिरे २७

और जो मनुष्य सम्पूर्ण आसक्ति छोड़कर किसी तरह महापथ में स्थित मेरे मन्दिर में पहुँच जावे वह तो क्यों न मेरा अत्यन्त प्यारा होगा ॥ २७ ॥

स्वर्गारोहगिरेर्मूर्ध्नि स्थानं मे परमं महत् ।
अयं तीर्थमयः शैलो यत्राहं संस्थितःसदा ।२८।

स्वर्गारोहण पर्वत की चोटी पर मेरा सर्वश्रेष्ठ स्थान है हे पार्वति ! यह सारा पर्वत तीर्थस्वरूप है; क्योंकि इसमें मेरा निवास है ॥ २८ ॥

दर्शनादेव पापानि ब्रह्महत्यासमानि च ।
नश्यन्ते किमु देवेशि पूजनात्स्पर्शनात्तथा २९

इस स्वर्गारोहण पर्वत के दर्शन से ही ब्रह्महत्या-सदृश महापाप नष्ट होते हैं। स्पर्श तथा पूजन करने से तो कहना ही क्या है ॥ २९ ॥

माध्वीगङ्गामहेशानि मन्दाकिन्यास्तु संगमे।
शिवप्रदं महातीर्थं क्रौञ्चहर्तुः प्रकीर्तितम् ॥ ३० ॥
यत्र स्नात्वा वरारोहे कैलासनिलये वसेत्।

हे महेश्वरि ! मन्दाकिनी गंगा और मधु गंगा के संगम पर स्कन्दजी का उत्पत्ति-स्थान है, इस कारण वह महातीर्थ जो सब प्रकार कल्याण देनेवाला है, जहां पर स्नान करके मनुष्य कैलास को प्राप्त होता है ॥ ३० ॥

क्षीरगंगा च या धारा मन्दाकिन्या सुसंगता ३१
ब्राह्मणं वै परं तीर्थं यत्र स्नात्वा गणो भवेत्।
अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि तीर्थं परमपावनम् ॥ ३२ ॥

और जो धारा क्षीर (दूध) गंगा नाम की मन्दाकिनी गंगा में मिली है इस संगम में ब्राह्मसंज्ञक परम तीर्थ है। जिसमें स्नान करने से मनुष्य शिवगण होजाता है और अब इसके उपरान्त परम पवित्र तीर्थ का वर्णन करते हैं ॥ ३१-३२ ॥

तस्माद्दक्षिणतो देवि यज्जलं बुद्बुदायते।
सामुद्रं तज्जलं प्रोक्तं स्पर्शनाच्छिवदायकम् ॥ ३३ ॥

हे देवि ! ब्राह्मतीर्थ के दक्षिण तरफ़ जो जल बुद्बुदाकार अर्थात् उबलता हुआ निकलता है वह समुद्रजल "सामुद्र-कुण्ड" कहा है। उसके स्पर्शमात्र से शिव की प्राप्ति होता है ३३

तत्तोयाद्वामभागेऽस्ति शैलः परमसुन्दरः ।
पौरन्दरः समाख्यातो यत्र मामिन्द्र ईश्वरि ॥ ३४ ॥
समाराध पूर्वं वै स्वस्य च स्थितिहेतवे ।
तत्रैव मे परं लिंगं दर्शनान्मुक्तिदायकम् ॥ ३५ ॥

सामुद्रकुण्ड की बाईं ओर एक अति मनोहर ऐन्द्र पर्वत है जहां इन्द्र ने अपना निवास चाहने की इच्छा से पहिले मेरी आराधना की। वहीं मेरा एक श्रेष्ठ लिंग है जो दर्शनमात्र से मुक्ति देता है ॥ ३४ । ३५ ॥

मत्स्थानाद्दण्डदशके हंसकुण्डमिति स्मृतम् ।
यत्र ब्रह्मा महादेवि हंसो भूत्वा समाययौ ॥ ३६ ॥
रेतःपानं तु कृतवान् गणैः सन्धर्षितस्तथा ।
तद्धंसकुण्डमाख्यातं पितृणां मुक्तिदायकम् ।३७।

मेरे (केदारलिङ्ग) स्थान से चालीस हाथ की दूरी पर हंसकुण्ड नामक कुण्ड है। हे देवि ! जहाँ ब्रह्मा ने हंस के रूप में आकर रेतःपान किया और उसी रूप में ब्रह्मा को मेरे गणों ने पकड़ा वही हंसकुण्ड है जो पितरों को मुक्ति देनेवाला है ॥ ३६ । ३७ ॥

पितृणां श्राद्धकर्त्तारो गच्छेयुः परमं पदम् ।
नरकस्थास्तु पितरो जन्मजन्मसमुद्भवाः ३८

जो मनुष्य उस हंसकुण्ड में अपने पितरों का श्राद्ध पिंडदान करते हैं वे भी परम पद को प्राप्त होते हैं और यदि

श्राद्ध करनेवालों के पितर नरक में हों चाहे उनको असंख्य वर्ष हो गये हों वे तुरन्त वहां से मुक्त होकर साक्षात् शिव-रूप हो जाते हैं ॥ ३८ ॥

त्रिशूलिनो महादेवाश्चन्द्रार्द्धकृतशेखराः ।
वृषस्कन्धास्थिताः सर्वे व्यालयज्ञोपवीतिनः ।३९।
भस्मांगरागसहिताः क्रीडेयुर्वै मया सह ।
इति तद्धंसकुण्डस्य माहात्म्यं वरवर्णिनि ॥४०॥

और शिवजी के सदृश हाथ में त्रिशूल, शिर में अर्द्धचन्द्र-गले में सर्प तथा सर्वांग में भस्मधारी और वृषभ वाहनवाले होकर मेरे साथ क्रीडा करते हैं, हे पार्वति ! यह मैंने तुम्हें हंस-कुण्ड का माहात्म्य सुनाया ॥ ३९ । ४० ॥

यस्माज्जलमयी भूमिः पदन्याससुकम्पिता ।
केदारक्षेत्रमाख्यातं तीर्थानां तीर्थमुत्तमम् ।४१।

हे पार्वति ! जहां भूमि पांव के रखने से हिलकर जल प्रकट करती है इसी कारण जिसे केदारक्षेत्र कहते हैं जोकि सम्पूर्ण तीर्थों में सर्वोत्तम तीर्थ है ॥ ४१ ॥

दृष्ट्वा केदारनाथं मां पीत्वा रेतोजलं मम ।
शिवलिङ्गं प्रजायेत हृदि तस्य महेश्वरि ॥४२॥

उस केदारनाथक्षेत्र में मुझ केदारलिंग के जो दर्शन करता है और उदककुण्ड का जलरूप रेत का पान करता है हे महेश्वरि ! उसके हृदय में ही शिवलिंग का प्रादुर्भाव हो जाता है ॥ ४२ ॥

यस्मिन्कस्मिन्नपि शिवे काले वै यत्र कुत्रचित्।
मृतः शिवपुरे याति पापी चापि शुभस्तथा।४३।

तब वह चाहे कहीं मरे और किसी समय में भी मरे और पापी हो या पुण्यात्मा हो मरने के अनन्तर उसे अवश्य शिव-लोक की प्राप्ति होती है ॥ ४३ ॥

यत्र देशे तु यो मर्त्यः केदारेश्वरदर्शने।
इत्युद्दिश्य मृतो देवि शिवो भवति मानवः।४४।

हे देवि ! 'मैंने केदारनाथ के दर्शन को जाना है" ऐसी कामना जिसके हृदय में हो वह विना दर्शन किये भी जहाँ कहीं मरे, मरने के अनन्तर शिवस्वरूप हो जाता है ॥ ४४ ॥

इति ते कथितं देवि केदारेश्वरक्षेत्रकम् ॥
श्लोकार्द्धंश्लोकमेकंवाश्रुत्वोक्त्वाचलभेच्छिवम्

हे देवि ! जो तुमने केदारक्षेत्र का माहात्म्य पूछा था सो मैंने इस प्रकार तुमसे कह दिया है। इस केदारनाथ तीर्थ के माहात्म्य का जो यात्री एक श्लोक अथवा आधा श्लोक सुनता है और पढ़ता है वह शिव (मंगल) यद्वा मोक्ष को पाता है॥४५॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे केदारमाहात्म्ये जोतिर्विजयानन्द-शर्मात्मजकुलानन्दशर्मस्वयंपाकिकृतायां भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः।

अथ कालीमठ-माहात्म्यप्रारम्भः।

वसिष्ठ उवाच।

केदारमण्डले दिव्ये मन्दाकिन्याः परे तटे।

सरस्वत्यास्तटे सौम्ये कालीतीर्थमितिस्मृतम् ।१।

वशिष्ठऋषि अरुन्धती से कहने लगे, हे देवि ! केदारखण्ड में मन्दाकिनी गंगा के पर तट में तथा सरस्वती गंगा के उत्तर तट में श्रीकाली तीर्थ (कालीमठ) है॥ १ ॥

अथ ते कथयिष्यामि कालिकायाः सुदुर्लभम् ।
माहात्म्यं परमं गोप्यं कलौ दुर्जनमानुषः ॥२॥

अब मैं तुम्हारे पास श्रीकाली का दुष्प्राप्य माहात्म्य कहता हूं जो कलियुग में अत्यन्त गुप्त रखने के योग्य है। क्योंकि इस युग में दुराचारी मनुष्य अधिक हैं ॥ २ ॥ के० ८६ अ०

काली प्रत्यक्षफलदा पूजनात्स्मरणादपि ।
यःकश्चिन्मानवो भक्त्या पूजयेत्परमां शिवाम्॥
स याति रुद्रभवनं यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ३ ॥

यहां जो कोई भक्तिपूर्वक भगवती कालिका की पूजा करता है और स्तोत्र पाठ आदि से श्रीभगवती का गुण कीर्त्तन करता है उसे श्रीजगदम्बा तुरन्त मन चाहा फल देती है और अंत में वह शिवलोक को प्राप्त होकर महाप्रलयपर्यंत वहां निवास करता है ॥ ३ ॥

कलौ नास्त्यैवनास्त्यैव विनाकालीं विमुक्तिदाम्
भुक्तिदा मुक्तिदा नृणां सर्वथैव मम प्रिये ॥ ४ ॥

हे प्रिये ! कलिकाल में काली से अन्य मुक्तिदाता नहीं है, आराधकों को वह भगवती इस लोक में ऐश्वर्य भोग और देहान्त में मुक्ति देती है ॥ ४ ॥

कालीक्षेत्रं समादिष्टं प्रत्यक्षं फलदायकम् ।
शरद्वसन्तयोः काले बलिपूजोपहारकैः ॥५॥
पूजयेद्भक्तिभावेन पूजयन्त्येव तं सुराः ।
भुक्त्वेह भोगानखिलानन्ते देवीपदं व्रजेत् ।६।

यह कालीक्षेत्र प्रत्यक्ष फल देनेवाला है जो मनुष्य यहां शरद तथा वसन्त ऋतु के नवरात्रों में (तथा माघ, अषाढ़ के नवरात्रों में) बलि, पूजा, पाठ, भेंट आदि से भक्तिपूर्वक श्री कालिका भगवती का पूजन करता है वह देवताओं का भी पूजनीय होता है और इस लोक में सुख भोगकर अन्त में देवीलोक को जाता है ॥ ५ । ६ ॥

अथ मध्यमेश्वर-माहात्म्यम् ।

ऊखीमठ से १४ मील है ।

ईश्वर उवाच ।

मध्यमेश्वरक्षेत्रं हि गोपितं भुवनत्रये ।
तस्य वै दर्शनान्मर्त्यो नाकपृष्ठे वसेत्सदा ॥१॥

शंकरजी पार्वती से कहते हैं-हे देवि ! मध्यमेश्वर महादेव का क्षेत्र तीनों लोकों में अभी तक गुप्त है, उस तीर्थ के दर्शन मात्र से ही मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करता है ॥ १ ॥ के० ४७ अ० ।

धन्याः कलियुगे घोरे मध्यमेश्वरदर्शनम् ।

ये कुर्वन्ति नरा भक्त्या वन्द्यास्ते भुवनत्रये ॥२॥

जो धन्यभाग्य मनुष्य बड़ी श्रद्धा से घर से चलकर मध्यमेश्वर महादेव के दर्शन को आते हैं और दर्शन पूजनादि करते है वे तीनों लोकों में पूजनीय होते हैं ॥ २ ॥

सरस्वत्यां नरः स्नातो न च भूयोऽभिजायते ।
स्नानं तैः सर्वतीर्थेषु दत्ता तैः सकला मही ॥
यैरत्र हि महापीठे स्नानं दानं जपः कृतः ॥ ३ ॥

हे पार्वति ! यहाँ सरस्वती नदी में स्नान करके मनुष्य फिर माता के गर्भ में जन्म धारण नहीं करता है और जिन्होंने इस पीठ में स्नान दान तप जप किया हो उन्होंने मानों सम्पूर्ण पृथ्वी दान दे दी और सब तीर्थों में स्नान कर लिया ॥ ३ ॥

माषमात्रमपि यत्र सुवर्णं दत्तमस्ति वै ।
न स जन्मसहस्रेषु दारिद्र्येण प्रपीड्यते ॥४॥

हे पार्वति ! जिस मनुष्य ने एक माषा भर भी सोना यहाँ दान दिया, वह फिर जन्म जन्मान्तरों में कभी दरिद्र नहीं होता ॥ ४ ॥

शतवंश्याः पराः पूर्वे शतवंश्या महेश्वरि ।
मातृवंश्याः शतं चैव तथा श्वसुरवंशकाः ।५।
तारिताः पितरस्तेन घोरात्संसारसागरात् ।
यैरत्र पिण्डदानाद्याः क्रिया देवि कृताः प्रिये ६

हे प्रिये ! जिन्होंने इस क्षेत्र में पिण्डदानादिक क्रिया की

है उन्होंने सौ पुरुष पहिले के सौ पुरुष पीछे के तथा सौ मातृ-वंश के और सौ श्वशुर वंश के सब पितर इस घोर संसार-सागर से पार लगा दिये हैं ॥ इति द्वितीय केदार-माहात्म्यम् ॥

अथ ऊषामठ-माहात्म्यम् ।

केदार से २५॥ मील है ।

बाणासुरस्य तनयाऽनिरुद्धस्य प्रिया सती ।
ऊषेति लोकविख्याता देवी साध्वीषु पूजिता १

बाणासुर की कन्या और कृष्ण पौत्र अनिरुद्ध की पत्नी पतिव्रताओं में श्रेष्ठ भगवती ऊषादेवी जिसका यश संसार में विख्यात है ॥ १ ॥

केदारदक्षिणे पार्श्वे योजनानां च षट्कके ।
मन्दाकिनीवामतटे तस्याः स्थानं प्रकीर्त्तितम् २

हे मुने ! उस देवी ऊषा का स्थान केदारनाथ से दक्षिण की ओर छे योजन (२५॥ मील) की दूरी पर मन्दाकिनी के वामतट ऊखीमठ में है ॥ २ ॥

युवनाश्वसुतो धीमान् सूर्यवंशविवर्द्धनः ।
मान्धाता नाम विख्यातस्तत्रैव तप्तवांस्तपः ॥
प्राप वै परमां सिद्धिं स च राजा महाबलः ॥ ३ ॥

सूर्यवंश का उज्ज्वल भूषण राजा युवनाश्व का पुत्र राजा मान्धाता ने इसी स्थान पर तपस्या की थी, जिसके प्रभाव से मान्धाता परम सिद्धि को प्राप्त हुआ ॥ ३ ॥

यत्रोषा चाऽनिरुद्धश्च चित्रलेखा च तत्सखी ।
ॐकारेशस्तथा देवी वाराही चण्डिका तथा ४
राजर्षिश्चाऽपि मान्धाता तिष्ठन्त्येते वरप्रदाः ।
दर्शनात्पूजनाद्येषां लभतेऽभीप्सितं फलम् ५

हे मुने ! जहां ऊषा, अनिरुद्ध और ऊषा की सखी चित्रलेखा ओंकारेश्वर, वाराही, तथा चण्डिका देवी और राजर्षि मान्धाता ये दर्शनाभिलाषी को वर देनेवाले नित्य निवास करते हैं, जिनके दर्शन तथा पूजन से मनुष्य मनचाहा फल पाता है ॥ ४ । ५ ॥

अथ तुंगनाथ-माहात्म्यम् ।

ऊखीमठ से १७ मील है ।

ईश्वर उवाच ।

तुंगनाथं शुभं क्षेत्रं पापघ्नं सर्वकामदम् ।
यद् दृष्ट्वा सर्वपापेभ्यो विमुक्तो लभते शिवम् १ ।

शंकर पार्वती से कहते हैं—हे प्रिये ! सम्पूर्ण कामना देनेवाले तुंगनाथ शिवजी के दर्शन जो मनुष्य उनके स्थान पर जाकर करता है, वह सब पापों से छूटकर कल्याण प्राप्त करता है ॥ १ ॥ के० ४६ अ० ॥

जलमात्रं हि देवेशि मम लिंगे प्रदास्यति ।
यावत्यः कणिकास्तत्र जलस्य लिंगकोपरि २ ।
तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते ।

हे देवेशि ! वहाँ जो मेरे लिंग पर केवल जल ही चढ़ावे तो जितने जलबिंदु लिंग के ऊपर पड़ें उतने हज़ार वर्ष तक वह शिवलोक में निवास करता है ॥ २ ॥

धूपं दीपं च यो दद्यान्न वै पश्यति नारकान् ३
नैवेद्यं विविधं यो वै अर्पयेन्मम भक्तितः ।
कदर्यान्नं न वै भुंक्ते तथा जन्मसहस्रकम् ॥ ४ ॥

और जो मनुष्य यहाँ श्री शिवजी को धूप, दीप, नैवेद्य आदि समर्पण करता है, वह नरक नहीं देखता और सहस्र जन्म तक दरिद्र नहीं होता ॥ ३ । ४ ॥

दक्षिणां मम यो दद्यात्सम्पूज्य भक्तितत्परः ।
न दारिद्र्यमवाप्नोति नरो जन्मसहस्रकम् ॥ ५ ॥

हे पार्वति ! जो मेरी पूजा करके भक्ति में तत्पर होकर मेरे लिये दक्षिणा (भेंट) देता है, वह यात्री हज़ारों जन्म पर्यन्त धनरहित नहीं होता है ॥ ५ ॥

तुङ्गक्षेत्रस्य द्रष्टार एकवारेऽपि ये नराः ।
मृताः क्वचित्प्रदेशेऽपि प्राप्नुयुः परमां गतिम् ६

जो मनुष्य केवल एक वार भी तुंगनाथजी के दर्शन करते हैं वह चाहे जहाँ कहीं भी मरें उनको परमगति का लाभ होता है ॥ ६ ॥

यः कश्चिन्मानवो देवि पितृन्सन्तर्पयेत्प्रिये ।
तीरे आकाशगंगायाः पितरस्तस्य सुन्दरि ७

दश पूर्वा दश परे मातृवंश्यास्तथैव च ।
शिवलोके महीयन्ते यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ८ ॥

तुङ्गनाथ क्षेत्र में जो मनुष्य आकाशगङ्गा के समीप तर्पण करे उसके दश पीढ़ी पहिले के और दश पीढ़ी पीछे के पितर तथा मातृवंश के पितर कल्पपर्यन्त शिवलोक में निवास करते हैं ॥ ७ । ८ ॥

पिण्डदानं च यो मर्त्यस्तीर्थे आकाशगंगके ।
पितरः कृतकृत्याः स्युस्तेन पुत्रेण सुन्दरि ९

हे सुन्दरि ! जो आकाशगङ्गा के कुण्ड पर अपने पितरों के निमित्त पिण्डदान देता है, उस पुत्र के द्वारा उसके पितर कृतकृत्य होते हैं ॥ ९ ॥

धन्योऽसौ त्रिषु लोकेषु यो दद्यात्कपिलां प्रिये ।
यावत्तदंगरोमाणि तावत्कल्पं दिवं वसेत् १० ।

हे प्रिये ! जो इस तीर्थ पर कपिला गौ का दान करे वह तीनों लोक में धन्य है और गाय के अङ्ग में जितने रोम हैं उतने सहस्र वर्षों तक वह स्वर्ग में निवास करता है ॥ १० ॥

यस्या जलकणेनापि देहलग्नेन सुन्दरि ।
कृतकृत्यो भवेन्मर्त्यो मज्जनात्किमु पार्वति ११

हे पार्वति ! जिस आकाशगङ्गा के जलविन्दु से ही यात्री कृतकृत्य होजाता है तो स्नान करने से कहना ही क्या है ॥ ११ ॥

इति तृतीय केदार-माहात्म्यम् ।

अथ रुद्रनाथ-माहात्म्यम्

मंडल से ६ मील है ।

ईश्वर उवाच ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि चतुर्थं वै हिमालये ।
रुद्रालयमिति ख्यातं तीर्थानां तीर्थमुत्तमम् ॥ १ ॥

श्रीशङ्करजी पार्वती से कहते हैं—हे देवि! हिमालय में चौथा रुद्रालय (रुद्रनाथ) नामक शिव स्थान है जो तीर्थों में सर्वोत्तम तीर्थ है ॥ १ ॥ के० ५१ अ० ॥

जरामरणजन्माद्यैर्बाध्यन्ते नैव मानवाः ।
सर्वतीर्थमयं स्थानं यत्राहं संस्थितः पुमान् ॥ २ ॥

जो मनुष्य रुद्रनाथ की यात्रा करते हैं, वे जन्म मरण बुढ़ापादिक दुःखों से पीड़ित नहीं होते हैं; क्योंकि वह सब तीर्थमय स्थान हैं, जहां मैं परम पुरुष स्वयं सर्वदा स्थित हूं ॥ २ ॥

यस्य तीर्थस्य देवेशि दर्शनादेव पातकम् ।
शतजन्मार्जितं यद्वै नष्टमेव न संशयः ॥ ३ ॥

हे देवेशि ! जिस तीर्थ के दर्शनमात्र से ही सौ जन्म का संचित जो पाप है वह नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

तत्र मां विधिवत्पूज्य गन्धपुष्पादिकैः पुमान् ।
इह भोगान्वरान्प्राप्य शिवलोके महीयते ॥ ४ ॥

उस रुद्रनाथ में गन्ध पुष्पाक्षतादि से मेरी विधिपूर्वक पूजा करके मनुष्य इस लोक में उत्तम सुख भोगों को प्राप्त होकर शिवलोक में निवास करता है ॥ ४ ॥

तत्र वैतरणी श्रेष्ठा पितॄणां तारिणी सरित् ।
तत्र पिण्डप्रदानेन गयाकोटिफलं लभेत् ॥५॥

वहां रुद्रनाथ में पितरों का उद्धार करनेवाली श्रेष्ठ वैतरणी नदी है, उस वैतरणी नदी में पिंडदान (श्राद्धतर्पण) करने से कोटि गया श्राद्ध तुल्य फल लाभ होता है ॥ ५ ॥

रम्यं शिवमुखं तत्र सर्वाभरणभूषितम् ।
एतस्य दर्शनादेव मुक्तो भवति मानवः ॥ ६ ॥

वहां श्रीरुद्रनाथजी का सम्पूर्ण आभूषणों से भूषित मुखारविन्द है, जो अत्यन्त मनोहर है और जिसके दर्शन ही से मनुष्य मुक्त होता है ॥ ६ ॥ इति चतुर्थ केदार-माहात्म्यम् ।

अथ कल्पेश्वर-माहात्म्यम् ।

हेलंग से ५ मील है ।

ईश्वर उवाच ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि पंचमं वै ममालयम् ।
कल्पस्थमिति विख्यातं सर्वपापप्रणाशनं ॥ १ ॥

शंकर बोले—हे देवि ! मेरा पाँचवाँ स्थान सुनो, जिसे कल्पस्थान (कल्पेश्वर) कहते हैं, जिसके आश्रय सम्पूर्ण पाप का नाश होता है ॥ १ ॥ के० ५२ अ० ॥

यत्राहं देवदेवेन ह्यर्चितः पर्वतात्मजे ।
मूढो दुर्वाससा शप्तो नष्टलक्ष्मीर्हतप्रभः ॥ २ ॥

हे पर्वतात्मजे ! जब दुर्वासा मुनि के शाप से देवेन्द्र की लक्ष्मी नष्ट हो गई, तब घबड़ाये हुए तेजरहित इन्द्र ने जिस कल्प क्षेत्र में मेरी पूजा की थी ॥ २ ॥

आराध्य मां त्वया युक्तं प्राप्तवान् कल्पपादपम् ।
अहं च देवदेवेशि कल्पेशत्वं समागतः ॥ ३ ॥

तब तुम्हारे सहित मेरी आराधना करके इन्द्र ने कल्पवृक्ष को पाया इसी हेतु हे देवेशि ! मैं कल्पेश भाव को प्राप्त हुआ ॥ ३ ॥

मल्लिङ्गदक्षिणे पार्श्वे कपिलं लिंगमुत्तमम् ।
यस्य दर्शनमात्रेण मम लोके महीयते ॥ ४ ॥

मेरे लिंग के दक्षिण ओर में परमोत्तम कपिल लिंग है, जिसके दर्शनमात्र ही से मेरे लोक में यात्री पूजित होता है ॥ ४ ॥

तदधो गिरिकन्ये वै नदी हैरण्यवती मता ॥ ५ ॥

हे पार्वति ! उस कपिल लिङ्ग के नीचे हिरण्यवती नामक नदी है ॥ ५ ॥ इति पञ्चम केदार-माहात्म्यम् ।

अथ ज्योतिर्मठ-माहात्म्यम् ।

ऊखीमठ से ५८ मील है ।

ततः क्रोशद्वये पुण्यं ज्योतिर्द्धाम शुभप्रदम् ।
नृसिंहरूपी भगवान्यत्रास्ते मुक्तिदायकः ॥ १ ॥

वशिष्ठजी बोले—इसके अनन्तर दो कोश की दूरी पर पवित्र ज्योतिर्द्धाम (जोशीमठ नामक स्थान) है, जहां भगवान् मुक्ति-

दाता बदरी नृसिंहबदरी नाम से विख्यात होकर निवास करते हैं ॥ १ ॥ के० ५८ अ० ॥

यत्र प्रह्लादयोगीन्द्रो हरिभक्तिपरायणः ।
एतत्तीर्थसमं नास्ति विष्णोः प्रीतिकरं परम् २

और भगवान् नृसिंह के अत्यन्त, भक्त प्रह्लाद योगीश्वर नृसिंह भक्ति में लवलीन हैं इस तीर्थ के समान विष्णु का प्यारा अन्य तीर्थ नहीं है ॥ २ ॥

एतत्पीठसमं नास्ति सिद्धिदं सर्वकामदम् ।
यदस्मिन् क्रियते कर्म तत्सर्वं कोटिसंख्यकम् ३

इस पीठ के तुल्य सम्पूर्ण कामना देनेवाला दूसरा पीठ नहीं है, जो कुछ पुण्य कर्म इसमें किया जाता है वह सब करोड़ों गुणा अधिक होता है ॥ ३ ॥

अथ विष्णुप्रयाग-माहात्म्यम् ।

वशिष्ठ उवाच ।

विष्णुप्रयागके स्नात्वा विष्णुलोके महीयते ।
यत्र ब्रह्मादयो देवाः परां सिद्धिमवाप्नुयुः ॥१॥

वशिष्ठ बोले- हे अरुन्धति ! विष्णुप्रयाग में स्नान करके मनुष्य विष्णुलोक को प्राप्त होता है, जहां ब्रह्मादिक देवता भी परम सिद्धि को प्राप्त हुए ॥ १ ॥ के० ५८ अ० ॥

नानातीर्थानि सन्त्यत्र सर्वकामप्रदानि च ।
स्मृत्वा सर्वाणि पापानि नश्यन्ति मम वल्लभे २।

हे प्रिये ! इस त्रिष्णुप्रयाग में अनेक तीर्थ हैं जो स्मरण-मात्र से सब पापों का नाश करते हैं और सब मनोरथ देते हैं ॥ २ ॥

विष्णुकुण्डे प्रयागे तु यत्र विष्णुः सनातनः ।
आराधितो नारदेन प्रत्यक्षमगमत्पुरा ॥ ३ ॥

पहले यहां विष्णुकुण्ड में नारद ऋषि ने भगवान् विष्णु की आराधना करके प्रत्यक्ष दर्शन पाये ॥ ३ ॥

सर्वज्ञत्वं ददौ तस्य सन्तुष्टो भगवान् हरिः ।
तदादीदं महाभागे विष्णुकुण्डमिति स्मृतम् ४

भगवान् विष्णु ने प्रसन्न होकर नारद ऋषि को सर्वज्ञ होने का वर दिया तवसे पूर्वोक्त कुण्ड की विष्णुकुण्ड संज्ञा हुई ४

तत्र स्नात्वा जपं कृत्वा नारायणपरायणः ।
नमो नारायणायेति जपेत्प्रणवपूर्वकम् ॥ ५ ॥

वहां स्नान करके भगवान् की भक्ति में लीन होकर "ॐ नमो नारायणाय" इस अष्टाक्षर मन्त्र का जप करे तो चारों पदार्थ पाता है ॥ ५ ॥

अतः परं परं स्थानं देवानामपि दुर्लभम् ।
सूक्ष्मक्षेत्रमिति प्रोक्तं सत्यं सत्यं न संशयः ६

इसके ऊपर जो स्थान है वह अति सूक्ष्मक्षेत्र कहा जाता है और यह सब स्थानों में श्रेष्ठ कहा जाता है. जो कि देवताओं को भी दुर्लभ है, यह सर्वथा सत्य है इस में थोड़ा भी सन्देह नहीं ॥ ६ ॥

अथ भविष्यबदरी-माहात्म्यम्

भविष्याबदरी प्रोक्ता महापापौघनाशिनी ।
धाराद्वयं समाख्यातं सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥ १ ॥

भविष्यबदरी (धवलगगा के किनारे तपोवन नामक स्थान में) महापापों के संहार करनेवाले हैं वहां दो धारायें हैं जो प्रत्यक्त विश्वास कराती हैं ॥ १ ॥ के० ५८ अ० ॥

उष्णोदकं महापुण्यं वह्निर्यत्रातपत्तपः ।
स्नात्वा तयोर्महाभागे विष्णुलोकं व्रजेन्नरः २॥

एक धारा गरम जल है और दूसरी शीतल जल की उष्णोदक धारा के पास अग्नि ने बड़ी उग्र तपस्या की । इन दो धाराओं में स्नान करके मनुष्य विष्णु लोक को प्राप्त होता है ॥ २ ॥ " हेलंग से ऊपर और जोशीमठ के नीचे खनोटि के समीप वृद्धबदरी के दर्शन हैं " ॥

अथ योगबदरी-माहात्म्यम् ।

पाण्डुना च तपस्तप्तं शप्तेन मृगरूपिणा ।
मुनिनापरकोपेन पाण्डुस्थानं ततः स्मृतम् ॥ १ ॥

मुनि ने (पाण्डुकेश्वर नामक स्थान में) क्रुद्ध होकर पाण्डु को शाप दिया तब शाप के कारण मृग रूप धारण किए हुए पाण्डु ने वहां पर तपस्या की इस कारण वहां पाण्डुकेश्वर नाम पड़ा, जिन्हें योगबदरी वा ध्यानबदरी भी, कहते हैं ॥ १ ॥ के० ५८ अ० ॥

प्रसन्नो भगवानाह पाण्डुं परमसुन्दरम् ।
भोभोः पाण्डो तव क्षेत्रे धर्मादीनां सुताःकिल २

पाण्डु की आराधना से प्रसन्न हुये भगवान् पाण्डु को कहा है, पाण्डो! तेरी भार्या से धर्मराज आदि देवताओं के पुत्र होंगे जो बड़े ज्ञानी धर्मात्मा होंगे ॥ २ ॥

भविष्यन्ति सुतात्मानः सर्वे शास्त्रार्थपारगाः ।
इति श्रुत्वा वचस्तस्य विष्णोश्च परमात्मनः ॥
कृतकृत्यं स्वयं मेने दर्शनादेव सुन्दरि ॥ ३ ॥

हे सुंदरि ! भगवान् विष्णु के इन वचनों को सुनकर पाण्डु प्रसन्न हुआ और उसने भगवान् के दर्शन पाकर अपने को कृतार्थ समझा ॥ ३ ॥

श्रीबदरीनाथजी की पंचरत्न स्तुति ।

पवन मन्द सुगन्ध शीतल हेम मन्दिर शोभितम् ॥
निकट गंगा बहत निर्मल बदरीनाथ विश्वम्भरम् ॥ १ ॥
शेष सुमिरन करत निशि दिन ध्यान धरत महेश्वरम् ॥
वेद ब्रह्मा करत स्तुति बदरीनाथ विश्वम्भरम् ॥ २ ॥
इन्द्र चन्द्र कुबेर धुनि कर धूप दीप प्रकाशितम् ॥
सिद्ध मुनि जन करत स्तुति बदरीनाथ विश्वम्भरम् ॥ ३ ॥
शक्ति गौरि गणेश शारद नारद मुनि उच्चारणम् ॥
योग ध्यानि अपार लीला बदरीनाथ विश्वम्भरम् ॥ ४ ॥
यक्ष किन्नर करत कौतुक ज्ञान गन्धर्व प्रकाशितम् ॥
लक्ष्मी कमला चँवर डोले बदरीनाथ विश्वम्भरम् ॥ ५ ॥
कैलास में एक देव निरंजन शैल शिखर महेश्वरम् ॥

राजा युधिष्ठिर करत स्तुति बदरीनाथ विश्वम्भरम् ॥६॥
बदरीनाथ जी के पंच रत्न पढ़त पाप विनाशनम् ॥
कोटि तीर्थ भयो है पुण्य प्राप्त ये फलदायकम् ॥ ७ ॥

अथबदरीनारायण-माहात्म्यंप्रारभ्यते

हरिद्वार से १८३ मील है ।

अरुन्धत्युवाच ।

बदरीवनमाहात्म्यं वद भर्तः कृतान्वित ।
यथा प्राह महादेवो महेशानीं तपोनिधे ॥
कियन्मानं तु तत्क्षेत्रं किं फलं तत्र जायते १

हे स्वामिन् ! कृपापूर्वक शिवजी ने जिस प्रकार पार्वतीजी के प्रति बदरीवन का माहात्म्य वर्णन किया था, हे तपोनिधे ! वह सब आप मुझे सुनाइये, उस क्षेत्र का कितना विस्तार है और वहां जाने से क्या फल प्राप्त होता है ॥ १ ॥ के० ५७ अ०

वशिष्ठ उवाच ।

शृणवरुन्धति तद्वृत्तं यथाह भगवाञ्छिवः ।
ततोऽहं संप्रवक्ष्यामि सावधानावधारय ॥ २ ॥

वशिष्ठ मुनि बोले—सुनो अरुन्धती ! जो बदरीनारायण माहात्म्य का वृत्तान्त तुमने पूछा सो जैसा पार्वतीजी से शिवजी ने कहा था वैसा ही मैं तेरे पास कहता हूं, तुम सावधान होके श्रवण करो ॥ २ ॥

कण्वाश्रमं समारभ्य यावन्नन्दागिरिर्भवेत् ।
तावत्क्षेत्रं परं पुण्यं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥३॥

कण्वाश्रम (नन्दप्रयाग) से लेकर नन्दपर्वत पर्य्यन्त इस बदरी क्षेत्र का प्रमाण है। भुक्ति मुक्ति और पुण्य का बढ़ानेवाला है ॥ ३ ॥

धन्याः कलियुगे घोरे ये नरा बदरीं गताः ।
तत्र ब्रह्मादयो देवा हरिभक्तिरताः प्रिये ॥ ४ ॥
निवसन्ति स्थले रम्ये नानातीर्थविराजिते ।
धन्यः स एव लोकेषु यो गच्छेद्बदरीं नरः ५

इस घोर कलियुग में वे मनुष्य धन्य हैं जो बदरीनारायण क्षेत्र में गये हैं। वहां हे प्रिये ! विष्णु भगवान् की भक्ति में तत्पर ब्रह्मादि देवता निवास करते हैं और वह अनेक तीर्थों से विराजित है। संसार में वही धन्य है जिसने बदरीनारायण की यात्रा की ॥ ४ । ५ ॥

चतुर्भेदं समाख्यातं क्षेत्रं परमपावनम् ।
स्थूलं सूक्ष्मं सूक्ष्मतरं शुद्धं चेति प्रकीर्तितम् ॥ ६ ॥
योजनत्रयविस्तारं दीर्घं द्वादशयोजनम् ॥ ७ ॥

अत्यन्त पवित्र श्रीबदरी क्षेत्र स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और शुद्ध इस तरह चार भेदों में विभक्त है, जोकि तीन योजन चौड़ा और बारह योजन लम्बा है अर्थात् २७ मील ४८० गज चौड़ा और १०९ मील १६० गज लम्बा श्रीबदरिकाश्रम क्षेत्र है ॥ ६ । ७ ॥

मनसापि स्मरेद्यो वै विशालबदरीति च ।
तद्वासी सोऽपि विज्ञेयो मृतो मुक्तिमवाप्नुयात् ८

जो मनुष्य विशालबदरी इस प्रकार मन से भी याद करे वे भी बदरीपुरी वासी जानने तथा वे मरणोत्तर मुक्ति भी पाते हैं ॥ ८ ॥

गन्धमादनबदरीनरनारायणाश्रमः ।
कुवेरादिशिलारम्यो नानातीर्थविराजितः ९ ।

गन्धमादन पर्वत में जो नर, नारायण दो पर्वत हैं इनके मध्य में बदरीनारायण है, इसीसे गन्धमादन बदरिकाश्रम नरनारायणाश्रम ये सब इसीके पर्यायवाची हैं। यह पुरी कुबेर, वाराह, नारद, गरुड़, मार्कंडेय शिलाओं से शोभायमान है तथा अनेक तीर्थों से विराजमान है ॥ ९ ॥

सर्वैर्देवगणैर्युक्तो नानामुनिगणान्वितः ।
चिह्नं तत्र प्रवक्ष्यामि येन ते प्रत्ययो भवेत्१०।

सम्पूर्ण देवताओं के गणों से युक्त रहता है, अनेक मुनिगण भी इसमें तपस्यार्थ नित्य निवास करते हैं। अब इस पुरी का प्रत्यक्ष चिह्न कहता हूं, जिससे तुमको प्रतीति होवे ॥ १० ॥

तप्तोदकमयी धारा वह्नितीर्थसमुद्भवा ।
वर्तते तत्र शुभगे देवानामपि दुर्लभा ॥ ११ ॥

हे सुभगे! इस वदरीपुरी में अग्नितीर्थ है, जिससे निकलती जलधारा गरम रहती है इसीसे तप्तकुण्ड है। यह प्रत्यक्ष चमत्कारी चिह्न प्रतीतिदायक है। यह तप्तोदक धारा देवताओं को भी दुर्लभ है ॥ ११ ॥

बदरीनाथनैवेद्यं यो मोहात्तु परित्यजेत् ।

चाण्डालादधमो ज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥ १२ ॥

बदरीनाथजी के नैवेद्य का जो कोई यात्री अज्ञानता से त्याग करे वह चाण्डाल से भी अधम जानना और सम्पूर्ण धर्मों से बाहर उसे जानना ॥ १२ ॥

लक्ष्मीः पचति नैवेद्यं भुङ्क्ते नारायणः स्वयम् ।
चाण्डालेनापि संस्पृष्टं न दोषाय भवेत्कचित् १३

वहाँ लक्ष्मीजी नैवेद्य बनाती हैं और साक्षात् नारायण आप भोजन करते हैं अतएव यदि चाण्डाल भी उस नैवेद्य का स्पर्श करले तो भी वह दूषित नहीं होता है ॥ १३ ॥

येन भुक्तं तु नैवेद्यं श्रीविष्णोः परमात्मनः ।
सैव लोके परब्रह्मस्वरूपो नात्र संशयः ॥ १४ ॥

जिसने परमात्मा श्रीविष्णु (बदरीनाथ) का नैवेद्य (भात) खाया वही संसार में परब्रह्म रूपी है इसमें संदेह नहीं, मुक्त हो गया जानना ॥ १४ ॥

बदरीनाथमूर्तिं वै मनसापि स्मरेत्तु यः ।
तेन तप्तं तपस्तीव्रं दत्ता तेन धराखिला ॥ १५ ॥

जो मनुष्य बदरीनाथ जी की मूर्ति का मन से भी प्रेमपूर्वक याद करता है, उसने तीव्र तप कर लिया और सम्पूर्ण पृथ्वी भी दान कर ली ॥ १५ ॥

माषमात्रं तु यो दद्यात्सुवर्णं रजतं हि वा ।
जन्मान्तरसहस्रेषु दरिद्रो नोपजायते ॥ १६ ॥

जो मनुष्य बदरीनाथ पुरी में बदरीश के प्रति एक मासा भी सुवर्ण अथवा चाँदी देता है वह हजार जन्म पर्यन्त दरिद्री नहीं होता, सर्वदा धनसम्पन्न ही रहता है ॥ १६ ॥

कणमात्रं चापि जलं पितॄनुद्दिश्य येन वै ।
दत्तं तेन कृतं सर्वं पितॄणां मुक्तिकारणम् ॥ १७ ॥

जिस मनुष्य ने कणमात्र जल बदरीनारायण पुरी में पितरों के वास्ते दिया, उसने पितरों की मुक्ति के समस्त कृत्य कर लिये, पितर उसके तृप्त हो जाते हैं ॥ १७ ॥

गमिष्यामि विशालां हि यो वै कथयतेऽनिशम् ।
सोऽपि तत्फलमाप्नोति बदरीनाथदर्शनात् ॥ १८ ॥

जो मनुष्य दिन रात सच्चे चित्त से कहता रहता है कि मैं बदरीनाथ में जाऊँगा, इस प्रकार जिसकी इच्छा नित्य बदरीनाथजी के दर्शन की लगी रहती है और किसी प्रकार जाने में विलम्ब वा विक्षेप पड़ता जाता है तो भी एकाग्र इच्छा के प्रभाव से जो फल बदरीनाथजी के दर्शन से होता है वही उसको मिलता है ॥ १८ ॥

बदरीवासिनो लोका विष्णुतुल्या न संशयः ।
तेषां दर्शनमात्रेण पापराशिः प्रणश्यति ॥ १९ ॥

बदरीनाथ के रहनेवाले मनुष्यगण निःसन्देह विष्णुतुल्य हैं, उनके दर्शनमात्र से पापों के समूह नष्ट हो जाते हैं ॥ १९ ॥

यावत्प्राणाः शरीरेऽस्मिन्यावदिन्द्रियशुद्धता ।
गात्राणि यावच्छैथिल्यं नाप्नुवन्ति महेश्वरि ॥

बदरीगमने तावद्विलंबो न विधेयकः ॥ २० ॥

जब तक शरीर में प्राण हैं, जब तक इन्द्रिय चैतन्य हैं और हे महेश्वरि ! जब तक अंग शिथिल नहीं हुए तभी तक विना विलम्ब किये बदरीनाथ की यात्रा करनी चाहिये ॥ २० ॥

यत्र साक्षात्सरिच्छ्रेष्ठा गंगा पापौघनाशिनी ।
विष्णोश्चाप्यत्र सान्निध्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥
एतत्परात्मकं क्षेत्रं न त्याज्यं मुक्तिमिच्छता २१

जहाँ पापसमूह को नष्ट करनेवाली साक्षात् गंगा (अलकनन्दा) जी बहन करती हैं, हे प्रिये ! सम्पूर्ण पापों को नष्ट करनेवाली विष्णु की स्थिति भी यहीं है यह सर्वोत्तम क्षेत्र मुक्ति चाहनेवाले पुरुष को नहीं त्यागना चाहिए ॥ २१ ॥

बदरीतरुणा या वै मण्डिता पुण्यगा स्थली ।
धन्यास्त एव लोकेषु यैर्दृष्टो बदरीतरुः ॥ २२ ॥

बदरी क्षेत्र वेर के वृक्षों से शोभित है और वह पवित्र स्थल है, जिन्होंने वह वृक्ष देखा लोगों में धन्य वही हैं ॥ २२ ॥

नरनारायणौ श्रेष्ठौ पर्वतौ मुनिवन्दितौ ।
यो नमेत्परया भक्त्या न स भूयोऽभिजायते ।
प्राप्ते कलियुगे घोरे अगम्या बदरी भवेत् ॥ २३ ॥

मुनियों से वन्दित नरनारायण नामक दो श्रेष्ठ पर्वतों को भक्तिपूर्वक प्रणाम करने से पुनर्जन्म नहीं होता है और जब घोर कलियुग आवेगा तब वर्त्तमान बदरी पुरी अगम्य होगी अर्थात् नरनारायण पर्वत इकट्ठे मिलने से रास्ता बंद होगा २३॥

स्नात्वा ऋषीणां गंगायां धारायां ये समाहिताः
पानं कुर्वन्ति ते मर्त्याः परं ब्रह्म समाप्नुयुः॥ २४॥

जो मनुष्य सावधानी के साथ ऋषि गंगा की धारा में स्नान करके उसके जल को पीते हैं वे मनुष्य परब्रह्म को प्राप्त होते हैं॥

कर्त्तव्या बदरीयात्रा भीतेन भवबन्धनात्।
जितेन्द्रियः शुद्धमना भूमिशायी महामतिः २५

जो यात्री संसाररूपी कर्म बन्धन से भय मानते हैं उन्होंने बदरीनाथ की यात्रा जितेन्द्रिय शुद्ध मन भूमि में सोकर करनी चाहिए॥ २५॥

पद्भ्यां गच्छेन्न वै याने यदीच्छेद्धर्ममुत्तमम्।
अन्नं परस्य नो भुञ्जेद्यात्राविफलता स्मृता॥२६॥

और उत्तम धर्म चाहे तो पैर पयादे यात्रा करे, सवारी में न जावे। यात्रा करनेवाला मनुष्य पराया अन्न न खावे; क्योंकि यात्रा का फल नहीं होता है॥ २६॥

अध्यात्मचिन्तनं कुर्वन् शृण्वन् वै तीर्थवैभवम्।
गच्छेन्नारायणस्थानं सर्वदेवैरधिष्ठितम्॥२७॥

रास्ते में परब्रह्म का कीर्तन और तीर्थमाहात्म्य सुनता हुआ समस्त देवता जहाँ निवास करते हैं, ऐसे नारायण स्थान बदरीनाथ में जावे॥ २७॥

प्रातःस्नात्वा तु गंगायां नारदीयह्रदादिषु।
वह्नितीर्थे ततः स्नायान्नियतो यतमानसः॥२८॥

तीर्थ में पहुँचने के दूसरे दिन प्रातःकाल गंगा (अलकनन्दा) में नारदादिकुण्डों में स्नान करके तब तप्तकुण्ड में स्नान सावधान होकर मन को जीत के संयम से तीर्थ करे २८

बदरीनाथभवनं गच्छेच्छ्रीहरिमानसः ।
उपायनं यथाशक्त्या भक्त्या परमयाऽर्पयेत् २९

तीर्थों में स्नान करके बदरीनारायण के मन्दिर में श्रीनारायण में एकाग्र मन लगाकर जावे और अपने वित्त के अनुसार परम भक्ति से भेंट चढ़ावे ॥ २९ ॥

आकिरीटांघ्रिपर्यन्तं पश्येन्नारायणं विभुम् ।
यथाशक्त्या ब्राह्मणेभ्यो दद्यादत्र महामनाः ३०

तब बड़े प्रेम से किरीट से लेकर चरण कमलों पर्यन्त श्रीबदरीनारायण की मूर्त्ति का दर्शन करना और शक्ति के अनुसार बड़ी उदार बुद्धि से ब्राह्मणों को दक्षिणा देना ॥३०॥

प्रदक्षिणं ततः कुर्याद्भक्त्या परमया युतः ।
ततस्तीर्थेषु चागत्य दद्याद्दानानि शक्तितः ३१

दर्शन करने के उपरान्त परम भक्तिभाव से युक्त होकर परिक्रमा करे तब तीर्थों में जाकर वित्तानुसार अनेक दान देवे ॥

गोचर्ममात्रा पृथिवी येन दत्ता कुटुम्बिने ।
तेन सर्वा मही दत्ता ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ ३२ ॥

जिस यात्री ने गोचर्ममात्र भूमि बदरीनाथ में जाकर कुटुंबी ब्राह्मण को दान दिया उसने सारी पृथ्वी का दान कर दिया ॥ ३२ ॥

दीपदश्चक्षुराप्नोति स्वर्णदो वपुरुत्तमम् ।
अन्नदस्तृप्तिमाप्नोति धातुदो भाग्यमुत्तमम् ॥ ३३ ॥

बदरीक्षेत्र में दीप दान करनेवाला उत्तम चक्षु पाता है, सुवर्ण देनेवाला उत्तम शरीर, अन्न देनेवाला तृप्ति और धातु देनेवाला उत्तम ऐश्वर्य पाता है ॥ ३३ ॥

यदत्र क्रियते कर्म कोटिकोटिगुणं भवेत् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन न पापं तत्र संचरेत् ॥ ३४ ॥

जो कुछ शुभाशुभ कर्म बदरीनाथ में किया जाता है वह सब कोटि-कोटि गुना होता है इसलिये उक्तक्षेत्र में पाप कभी नहीं करना ॥ ३४ ॥

आचामेत्कूर्मधारायां जलं परमपावनम् ।
यदीच्छेत्सुतरां सिद्धिं दर्शनेन परात्मनः ॥ ३५ ॥

यदि परमात्मा बदरीनाथ के दर्शन में सम्यक् प्रकार शुद्धि चाहे तो प्रथम परम पवित्र करनेवाले जल से कूर्मधारा में आचमन करना ॥ ३५ ॥

तथा पञ्चशिलां नत्वा परिक्रम्याऽर्चयेत्सुधीः ।
धन्यः स एव लोकेषु बदरीशप्रसादतः ॥ ३६ ॥

वैसे ही पंचशिला को प्रणाम करके सद्बुद्धि यात्री को उन का पूजन तथा परिक्रमा भी करनी चाहिए। ऐसा जो यात्री करता है वही बदरीनाथ के प्रसाद से लोगों में धन्य है॥३६॥

परिक्रमेत्तु यो देवं बदरीनायकं परम् ।

स समुद्रवनद्वीपा दत्ता तेन वसुन्धरा ॥ ३७ ॥

जो यात्री बदरीनाथजी की ४ परिक्रमा करता है उसने सप्त समुद्र सप्त द्वीप, द्वादशारण्यवती पृथ्वी दान कर दी है ॥३७॥

नारदीया यत्र शिला विष्णुलोकप्रदायिनी ।
श्रूयन्ते यत्र निर्घोषा वेदानां सुमुनीरिताः ॥३८॥

जहाँ विष्णुलोक देनेवाली नारदशिला है जहाँ मुनि नारद के कहे वेदों के शब्द सुनाई देते हैं ॥ ३८ ॥

नारदीये ह्रदे स्नात्वा न भूयः स्तनपो भवेत् ।
तत्र चिह्नं प्रवक्ष्यामि येन ते प्रत्ययो भवेत् ॥
मृत्स्ना कुंकुमवर्णाभा दृश्यतेऽतीवसुन्दरा ३९

यहाँ नारदकुण्ड है, इसमें स्नान करने से फिर माता का दूध पीनेवाला नहीं होता है, हे अरुन्धति ! नारदकुण्ड के चिह्न को मैं कहता हूँ जिससे तुझको प्रतीति होवे कि वहाँ की मिट्टी केशर के रंग की अति सुन्दर सुहावनी देखने में आती है ॥ ३९ ॥

तत्र बह्वयो मूर्त्तयश्च सन्ति श्रीश्रीपतेर्विभोः ।
युगेयुगे भविष्यन्ति विष्णोरंशा मुनीश्वराः ॥
स्थापयिष्यन्ति देवेशं बदरीनाथनामकम् ॥४०॥

उस नारदकुण्ड में श्रीलक्ष्मीपति सर्वसामर्थ्य नारायण बदरीविशाल की बहुत सी मूर्ति हैं। युग-युग में नारायण अंश से मुनीश्वर होते हैं, वे श्रेष्ठ बदरीनाथ को स्थापन करते हैं। युग-युग में अलग मूर्ति स्थापित होती है ॥ ४० ॥

शिला यत्र च वाराही पापहा सर्वकामदा ।
वाराहकुण्डं चाख्यातं विष्णुपद्यां हि मे प्रिये ।
तत्र स्नात्वा तथा जप्त्वा फलानन्त्यं लभेन्नरः ४१

जहाँ पापों का नाश करनेवाली समस्त कामना देनेवाली वाराही शिला है, वहाँ वाराहकुण्ड भी गंगाजी में ख्यात है । हे प्रिये ! इस स्थान में स्नान तथा जप करने से यात्री अनन्त फल पाता है ॥ ४१ ॥

नारसिंही शिला यत्र सर्वपापप्रणाशिनी ।
कुण्डं तत्र समाख्यातं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्४२॥

उसी के समीप नरसिंहशिला सर्वपाप नाश करनेवाली है उसी शिला के समीप नरसिंहकुण्ड भोग मोक्ष देनेवाला है ४२॥

मार्कण्डेया शिला तत्र सर्वलोकेषु दुर्लभा ।
यां स्पृष्ट्वापि नरो भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते॥४३॥

और सम्पूर्ण लोकों में दुर्लभ मार्कंडेय शिला है, जिसके स्पर्शमात्र से यात्री सम्पूर्ण पापों से छूट जाता है ॥ ४३ ॥

गारुडी च तथा प्रोक्ता गरुडेन महात्मना ।
प्राप्तं हरेर्वाहनत्वं सख्यं च परमं हरेः ॥ ४४ ॥

ऐसे ही एक गरुड़शिला है जहाँ महात्मा गरुड़ ने विष्णु का वाहनत्व तथा नारायण की मित्रता पाई है ॥ ४४ ॥

एतत्पञ्चशिला मध्ये ह्यासनं बदरीपतेः ।
वह्नितीर्थसमायुक्तं विष्णुलोकप्रदं शिवे ॥४५॥

ये जो पाँचशिला कही हैं इनके बीच में श्रीवदरीविशाल का आसन है, यह आसन भी अग्नितीर्थ से युक्त है, जिससे बदरीश के सिंहासन के नीचे से गर्म जल निकलता है ॥ ४५ ॥

वह्नितीर्थं यत्र देवि वह्निनाऽऽराधितो हरिः ।
तस्मै स सर्वमेध्यत्वं विश्वात्मा प्रददौ तदा ॥
अतः परतरं नास्ति तीर्थं त्रैलोक्यदुर्लभम् ॥ ४६ ॥

हे देवि ! जहाँ पहिले अग्नि ने हरि की पूजा की थी यह वही अग्नितीर्थ है जिससे विश्वात्मा भगवान् ने अग्नि को सर्वभक्षी होने पर भी पवित्रता दी है । इस तीर्थ से अन्य त्रैलोक्य में दुर्लभ ऐसा तीर्थ कोई नहीं है ॥ ४६ ॥

ब्रह्मकपाले पितरः प्रेक्ष्यमाणाः स्ववंशजम् ।
तिष्ठन्तितस्मात्पिण्डानां प्रदानं मुनयोऽब्रुवन् ४७

जो इस क्षेत्र में ब्रह्मकपाल पितृतीर्थ है इसमें पितर अपने वंश में उत्पन्न मनुष्य को देखते रहते हैं कि कब हमारा वंशवाला यहाँ आवे जिससे हमारी मुक्ति होवे इस ब्रह्मकपाल में पितरों को पिंडदान करना ऐसा मुनिजनों ने कहा है ॥ ४७ ॥

अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि भक्त्याभक्त्याथवा पुनः ।
यैरत्र पिण्डवपनं जलतर्पणकं कृतम् ॥ ४८ ॥

जिन यात्रियों ने इस ब्रह्मकपाल में अज्ञान से अथवा ज्ञान से तथा भक्ति से अथवा अभक्ति से पिण्डदान तर्पण किया ४८ ॥

तारिताः पितरस्तेन दुर्गता अपि पापिनः ।
किं गयागमनाद्देवि किमन्यत्तीर्थतर्पणैः ॥ ४९ ॥

उसने अपने दुर्गति में प्राप्त पापी भी पितर तार दिये। हे देवि ! जिस यात्री ने ब्रह्मकपाल तीर्थ में श्राद्ध कर लिया तो फिर गया जाने से तथा अन्य तीर्थों में तर्पण करने से क्या है सब कुछ इसी तीर्थ में हो गया ॥ ४९ ॥

यानुद्दिश्य च सलिलं पिण्डदानं तथैव च ।
कृतं ते विष्णुलोकाय गच्छन्ति स्मरणादपि ५०

इस तीर्थ में जिसके निमित्त जलदान तथा पिण्डदान किया है वे सब स्मरण ही मात्र से विष्णुलोक को जाते हैं ॥ ५० ॥

इदं परमकं स्थानं श्रीविष्णुः परमेश्वरः ।
चतुर्युगेन त्यजति सत्यं सत्यं न संशयः॥५१॥

यह परम स्थान नारायण का है जिसे परमेश्वर श्रीविष्णु भगवान् बदरीविशाल चार ही युगों में नहीं छोड़ते नित्य यहाँ निवास करते हैं इसमें सत्य है सत्य है संदेह कुछ नहीं ५१

पश्चिमे क्रोशखण्डार्द्धे बदरीनाथधामतः ।
उर्वशीकुण्डमाख्यातं सर्वसौन्दर्यदायकम्॥५२॥

श्रीबदरीनाथजी के धाम से पश्चिम ओर आधा कोश की दूरी पर उर्वशीकुण्ड विख्यात है जो समस्त सुरूपता देनेवाला है ॥ ५२ ॥

स्वर्णधाराभिधं तीर्थं देवाद्गव्यूतिमात्रतः ।
नानारोगार्तदेहोपि स्नानाद्यत्र सुखी भवेत् ५३

हे अरुन्धति ! स्वर्णधारा (कांचनगंगा) नामक तीर्थ बदरीनाथ से दो कोश की दूरी पर है, जहाँ स्नान करने से

अनेक रोगों से पीड़ित यात्री नीरोग होकर सुखी होता है ॥५३॥

शेषतीर्थे महापुण्ये गङ्गायां स्नाति यो नरः ।
इहलोके वरान्भोगान्परत्र च परां गतिम् ॥५४॥

और शेषतीर्थ गंगा बड़ा पुण्य देनेवाली है, इसमें जो मनुष्य स्नान करता है वह यहाँ श्रेष्ठ भोग भोग के परलोक में परम गति को प्राप्त होता है ॥ ५४ ॥

बदरीनाथदेवस्य वामे तीर्थवरं स्मृतम् ।
इन्द्रधारेति विख्यातं स्नात्वा चेन्द्रसमो भवेत् ५५

बदरीनाथ देव के बाईं ओर तीर्थों में श्रेष्ठ इन्द्रधारा करके विख्यात है जिसमें स्नान करने से यात्री इन्द्र के समान हो जाता है ॥ ५५ ॥

व्यासतीर्थं समाख्यातं व्यासदेवेन सेवितम् ।
अवगाह्य तथा दत्त्वा जप्त्वा ब्रह्म लभेन्नरः ॥
पुस्तकं व्यासदेवस्य शिलारूप्यत्र वर्तते ॥ ५६ ॥

और एक व्यासतीर्थ विख्यात है जो व्यासदेवजी ने सेवन किया था, इसमें जप करने से यात्री परब्रह्म को पाता है । यहाँ शिलारूप से व्यासजी की पुस्तक विद्यमान है ॥ ५६ ॥

चक्रतीर्थे नरः स्नात्वा विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ।
चक्रतीर्थस्य माहात्म्यादर्जुनः परमास्त्रवित् ॥
भूत्वाननाशसर्वान्स्वान्रिपून्दुर्योधनादिकान्

हे अरुन्धति ! चक्रतीर्थ का माहात्म्य है कि यात्री इस

तीर्थ में स्नान करने से विष्णुलोक को जाता है। इस चक्रतीर्थ के माहात्म्य से अर्जुन परम अस्त्रों का जाननेवाला होकर दुर्योधन आदि समस्त शत्रुओं को जीता ॥ ५७ ॥

केशवप्रयागतीर्थं क्षेत्राणां परमं मतम्।
महाविष्णुश्च तत्रैव मणिभद्राश्रमस्तथा ॥ ५८ ॥

अलकनन्दा सरस्वती गंगा के संगम पर केशवप्रयाग नाम का तीर्थ क्षेत्रों में उत्तम क्षेत्र है। यहां महाविष्णु रहते हैं (जो मनुष्य इस सरस्वती के जल में रहकर सरस्वती का एक हज़ार जप करता है, उसको सरस्वती प्राप्त होती है) मणिभद्राश्रम भी यहाँ ही है, अब इस स्थान पर माणा गाँव बसा है ॥ ५८ ॥

वसुधाराभिधं तीर्थं सर्वपापप्रणाशनम्।
पापिनां मूर्ध्नि यत्तोयबिन्दवो न पतन्ति हि ५९ ॥

वसुधारा नाम का तीर्थ (बदरीनाथ से २ मील की दूरी पर) सम्पूर्ण पापों का नाश करनेवाला है, जिसमें चमत्कार है कि पापी यात्री जब वहाँ जाता है तो उसके शिर में वसुधारा के जलबिन्दु नहीं पड़ते हैं ॥ ५९ ॥

चतुर्वर्गफलप्राप्तिर्जायतेऽत्र वरानने।
नाम्ना धर्मशिला तत्र स्नात्वा विश्य महामतिः ६०

हे वरानने! इस तीर्थ में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों वर्ग की फल प्राप्ति होती है और जहां धार पड़ती है वहाँ धर्मशिला नाम की एक शिला है, स्नान कर यात्री उस शिला में जप करे ॥ ६० ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे वशिष्ठारुन्धतिसंवादे बदरीमाहात्म्ये प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

प्रतिष्ठाने पुरे वैश्यो बभूव धनतोयधिः ।
नाम्ना शंकरगुप्तोऽसौ धर्मात्मा विष्णुतत्परः॥ १॥

एक समय प्रतिष्ठान नगर में धर्मात्मा विष्णु भक्ति में तत्पर शंकरगुप्त नाम का एक वैश्य हुआ जो धन का समुद्र था ॥ १॥

अपुत्रो दुःखितो नूनं नाऽलभच्छर्म कर्हिचित् ।
भृशं चिन्तयमानोऽसौ किं धनेन ममेति च ।
अपुत्रस्य गृहं बाह्यं सर्वं शून्यं हि कल्पते ॥ २ ॥

वह अपुत्र होने से कहीं भी उसको सुख न मिलता था। बारंबार चिन्ता करता रहा कि मुझको इतना धन का क्या करना है; क्योंकि अपुत्र मनुष्य को घर बाहर सब सूना है ॥ २ ॥

एकदा सन्मतिर्जाता धनसंचयकारिणः ।
सर्वं धनं समानीय प्रभासे प्रययौ वणिक् ॥ ३ ॥

एक समय धन संचय करनेवाले शंकरगुप्त वैश्य को ऐसी सद्बुद्धि हुई कि समस्त अपना कमाया धन लेके प्रभास तीर्थ में गया ॥ ३ ॥

ब्राह्मणांश्च समाहूय नानादेशाद्वरानने ।
सर्वान् प्रणम्य भूदेवान् परिक्रम्य पुनःपुनः ॥४॥

तहाँ अनेक देशों के ब्राह्मणों को बुलाय के हे वरानने ! सम्पूर्ण समागत ब्राह्मणों को प्रणाम और बारम्बार परिक्रमा करके ॥ ४ ॥

उवाचविनयाविष्टो धनं मेऽपुत्रजन्मनः ।
गृह्णीध्वं मुनयः सर्वे गतिर्मे भवतात्खलु ॥ ५ ॥

विनय से कहने लगा कि हे भूमिदेवो ! मैं अपुत्र हूँ मेरा सम्पूर्ण धन आप ग्रहण करें, ऐसा कोई उपाय करिये कि मेरे पुत्र हो जावे जिससे मेरी सद्गति होवे ॥ ५ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा कृपाविष्टा मुनीश्वराः ।
ऊचुः शंकरगुप्तं तं विनयाविष्टमानसम् ॥ ६ ॥

इतना शंकरगुप्त के वचन सुनके मुनीश्वर कृपा करके विनय से शंकरगुप्त को कहने लगे ॥ ६ ॥

भो भो वैश्य महाभाग कुर्मः पुत्रेष्टिकां तव ।
येनोपायेन ते पुत्रो भविता विष्णुतत्परः ॥ ७ ॥

कि हे वैश्य ! हम तेरा पुत्रेष्टियज्ञ करते हैं जिस उपाय से तेरा पुत्र होगा और विष्णुभक्ति में तत्पर रहेगा ॥ ७ ॥

परं दारुणवेलायां पृष्टाः स्मो भवता वयम् ।
तेन ते परमं पापं करिष्यति सुतः किल ॥ ८ ॥

परन्तु तुमने हमको दारुणबेला सायंकाल में पूछा है, इससे तेरा पुत्र निश्चय परम पाप करेगा ॥ ८ ॥

पुनर्वै बदरीशस्य यात्रया भविताऽमलः ।
इत्युक्त्वा तं महाभागं चक्रुरिष्टिं महाविधिम् ॥ ९ ॥

श्रीबदरीनाथ की यात्रा करके फिर निष्पाप होजायगा, इतना ब्राह्मणों ने वैश्य को कहके विधिपूर्वक पुत्रेष्टियज्ञ किया ॥ ९ ॥

चरुमुत्पाद्य तत्रापि ददुस्तस्मै महात्मने ।
सोऽपि वैश्यो महाभागे ददौ बहुतरं धनम् ।।१०।।

जिस यज्ञ में यज्ञभाग उत्पन्न करके महात्मा वैश्य को दिया उस महा भाग्यशाली वैश्य ने भी बहुत धन ब्राह्मणों को दिया १०

तृप्तास्तेऽपि ययुर्विप्राः स्वं स्वं देशं मुदान्विताः ।
शंकरोऽपि चरुं लब्ध्वा प्रतिष्ठाने पुरे ययौ ॥ ११ ॥

जिससे ब्राह्मण भी तृप्त होकर प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने देशों को गए । शंकर वैश्य भी चरु पाय के अपने प्रतिष्ठान नगर में गया ॥ ११ ॥

प्रियायै प्रददौ तूर्णं गर्भं प्राप वरांगना ।
ततस्तु दशमे मासि प्रासूत वरपुत्रकम् ॥ १२ ॥

वह चरु शीघ्र अपनी स्त्री को दिया जिससे वैश्य-पत्नी ने श्रेष्ठ गर्भ धारण किया और दशवें महीने में श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न किया ॥ १२ ॥

उवाच च पिता तं वै ब्रह्मदत्तेति नामतः ।
ब्राह्मणैस्तु यतो दत्तोऽसौ ततो ब्रह्मदत्तकः ॥ १३ ॥

उस पुत्र के पिता ने भी पुत्र का नाम ब्रह्मदत्त कहा ; क्योंकि वह ब्राह्मणों ने दिया था, इससे ब्रह्मदत्त हुआ ॥ १३ ॥

ववर्ध सोऽपि वैश्यस्य पुत्रः शुक्ले यथा शशी ।
वयोयौवनमापन्नो वैश्यपुत्रो महाद्युतिः ॥ १४ ॥

तब वह वैश्य का पुत्र शुक्लपक्ष के समान प्रतिदिन बढ़ने

लगा एवं प्रकार वह वैश्य का पुत्र जवानी अवस्था में प्राप्त होके बड़ी कान्तियुक्त हुआ ॥ १४ ॥

एकदा प्रययौ सोऽपि विक्रेतुं सार्थकं बहु ।
गच्छमानो ददर्शाग्रे म्लेच्छवृन्दं वरानने ॥ १५ ॥

हे वरानने ! एक समय में ब्रह्मदत्त वैश्य बहुत सा व्यापारी माल बेचने को कहीं जाता हुआ आगे से म्लेच्छों का समूह देखता हुआ ॥ १५ ॥

तत्र म्लेच्छीं ददर्शासौ रूपयौवनशालिनीम् ।
वराननां सुकेशीं च नेत्राभ्यां जितखञ्जनाम् १६

तहाँ म्लेच्छों के साथ ब्रह्मदत्त ने रूप एवं जवानी से भरी एक स्त्री सुन्दर केशवाली देखी, जिसके नेत्रों ने खंजन पक्षी को भी जीत लिया है ॥ १६ ॥

दृष्ट्वा मुमोह तां वेश्यां ब्रह्मदत्तो विशः सुतः ।
धनं तस्यै ददौ सर्वं तत्संगे निरतोऽभवत् ॥ १७ ॥

ऐसी उस वेश्या को देख के बनिये का बेटा ब्रह्मदत्त मोहित होगया तब अपना सर्व धन उस कुलटा को देके उसके संग में तत्पर रहने लगा ॥ १७ ॥

तद्धर्मनिरतश्चापि बभूव वरवर्णिनि ।
धनं सर्वं क्षयं नीतं दस्युधर्मरतोऽभवत् ॥ १८ ॥

और उसी वेश्या के म्लेच्छ धर्म में तत्पर भी हो गया । हे वरवर्णिनि अरुन्धति ! जब वेश्याप्रसंग से सम्पूर्ण धन अपना नाश कर लिया तब चोरी करने लगा ॥ १८ ॥

तां गृहीत्वा वने वेश्यामुवास जनवर्जिते ।

एकदा ब्रह्मदत्तोऽसौ गतश्चौर्याय कानने ॥ १९ ॥

इस प्रकार कुकर्मी होके उस वेश्या को लेके निर्जन वन में रहने लगा । एक समय वह ब्रह्मदत्त चोरी करने के लिये वन में गया ॥ १९ ॥

एतस्मिन्नन्तरे विप्राञ्जातरूपपरिच्छदान् ।
आयातान् दृष्टवांस्तूर्णं धनुः सज्जं चकार ह ॥ २० ॥

इस बीच उसने सुवर्ण वस्त्राच्छादितवाले ब्राह्मण आते देखे और धनुष चढ़ाय के वाण सन्धान किया ॥ २० ॥

यत्किञ्चित्स्वं च विप्रेभ्यो मृतेभ्यो मम वल्लभे ।
जग्राह च पुनर्दृष्ट्वा विप्रकीर्णजटाधरान् ॥ २१ ॥

उन मार्ग चलनेवाले ब्राह्मणों को मार दिया जो कुछ धन उनके पास था वह सब मृतकों से लेने में वस्त्रादि खोलने पर वैश्य ने देखा कि वे मृतक बिखरी जटा धारण कर रहे हैं ॥ २१ ॥

विप्राणां दर्शनादेव किञ्चित्पापं क्षयं गतम् ।
चिन्तयामास बहुशो ब्रह्महत्याभिपीडितः ॥ २२ ॥

ब्रह्मदत्त वैश्य के ब्राह्मणों के देखने ही से कुछ पाप क्षय हुए, जिससे ब्रह्मवध के दुःख से पीड़ित होके चिन्ता करने लगा ॥ २२ ॥

किं मया दुष्कृतं कार्यं कृतं पापेन कर्मणा ।
धनं लुब्धेन सुतरां क गच्छामि क मे गतिः ॥ २३ ॥

कि क्या मुझ पापकर्मा ने बुरा कार्य किया है जो धन के

लोभ से विशेषतः ब्रह्महत्या करी है, अब मैं कहां जाऊँ, कहाँ मेरी गति होगी ॥ २३ ॥

ब्राह्मणानां प्रसादेन जातोऽस्मि पितृप्रार्थितः।
अत्यन्तंचिन्तयानोऽसौययौयत्रपितास्थितः २४

पहिले ब्राह्मणों ही के प्रसाद से मेरे पिता के प्रार्थना करने से मैं पैदा हुआ था इत्यादि अत्यन्त चिन्ता करता हुआ जहां उसका पिता था उसके पास गया ॥ २४ ॥

पादयोः पतितस्तस्य शंकरस्यातिदुःखितः।
मयातिदुष्कृतं तात कृतं नीतं धनं क्षयम्॥२५॥

अपने पिता शंकरगुप्त के पैरों में अति दुःखित होके गिर पड़ा और कहने लगा कि हे पिता! मैंने अति बुरा कर्म किया है कि समस्त धन दुष्ट कामों में क्षय किया ॥ २४ ॥

चाण्डाल्या सह संभोगी ब्रह्महत्यासमन्वितः।
गतिः कथं मे भविता पितर्मे वद साम्प्रतम् ॥२६॥

और चाण्डाली के साथ भी संभोग किया अब ब्रह्महत्या से भी युक्त हो गया हूँ, हे पिता! अब मेरी गति कैसी होगी, इस समय मुझको कहिये ॥ २६ ॥

पापोहं पापकर्माहं मज्जमानो भवार्णवे।
शिक्षमांकृपया तात येनाहंसौख्यमाप्नुयाम् २७

मैं पापी हूं, पाप कर्म करनेवाला हूँ, संसार-सागर में डूब रहा हूं, हे पिता! अब ऐसी शिक्षा कृपा करके करो कि जिससे मैं सुख पाऊँ ॥ २७ ॥

शंकरगुप्त उवाच

एवमेव पुरा तात ब्राह्मणैः समुदीरितम् ।
अन्यथा तद्वचः पुत्र कथं भवितुमर्हति ॥
भवितव्यं भवत्येव नात्र कार्या विचारणा ॥२८॥

शंकरगुप्त कहने लगा कि हे पुत्र ! ऐसा ही ब्राह्मणों ने पहिले प्रभासतीर्थ में मुझसे कह दिया था कि अकाल पूछने के कारण तेरा पुत्र पापी होगा, तब उन ब्राह्मणों का वचन अन्यथा कैसे हो सकता था। जो जैसा होनेवाला होता है, वह अवश्य होता ही है ॥ २८ ॥

पुत्र उवाच

किं कर्त्तव्यं मयेदानीं कथं मे निष्कृतिर्भवेत् ।
मज्जमानं हि पापाब्धौ रक्ष तात कृपान्वितः २९

ब्रह्मदत्त कहने लगा कि हे पिता ! अब मुझको क्या करना है कैसा मेरा पापों से निवटारा होगा, पापरूपी समुद्र में डूबते हुये मेरी रक्षा कृपापूर्वक करिये ॥ २९ ॥

पितोवाच

तैरेव गदितं पुत्र ब्राह्मणैर्यन्महात्मभिः ।
तत्ते सम्प्रति वक्ष्यामि सावधानोऽवधारय ॥३०॥

ब्रह्मदत्त का पिता कहता है कि हे पुत्र ! जिन्होंने तेरे पुत्र उत्पन्न होने का वर दिया था, उन्हीं महात्माओं ने यह भी कह दिया था जो मैं तुझको कहता हूँ, तू सावधानी से धारण कर ॥ ३० ॥

कैलासे पर्वतश्रेष्ठे गन्धमादनसंज्ञिते ।
बदरीवनमध्यस्थो बदरीनायको हरिः ॥ ३१ ॥

उन्होंने यह कहा था कि पर्वतों में श्रेष्ठ गन्धमादन संज्ञक पर्वत कैलास में है जिसमें बदरीवन क्षेत्र है, उस वन के मध्य में बदरीनाथ भगवान् हरि हैं ॥ ३१ ॥

दृष्ट्वा यं ब्रह्महत्याभिर्मुच्यते नात्र संशयः ।
पुत्र त्वमपि गच्छस्व बदरीनाथदर्शने ॥ ३२ ॥

जिसके दर्शन करने से ब्रह्महत्या से भी मनुष्य छूट जाते हैं, इसमें संदेह नहीं है, हे पुत्र ! तू भी बदरीनारायण के दर्शन करने को उत्तराखण्ड में चला जा तब ब्रह्महत्यादि पाप छूटेंगे ॥ ३२ ॥

वशिष्ठ उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य शंकरस्य महात्मनः ।
ययौ गणेशं सम्पूज्य नमस्कृत्य च ब्राह्मणान् ३३

वशिष्ठजी बोले—इतना वचन ब्रह्मदत्त अपने पिता महात्मा शंकर का सुनके गणेशजी का पूजन और ब्राह्मणों का पूजन करके उत्तराखण्ड को चला ॥ ३३ ॥

गंगाद्वारे समागत्य नमस्कृत्य महेश्वरम् ।
भैरवं चापि सम्पूज्य फलरक्षणहेतवे ॥ ३४ ॥

पहिले गंगाद्वार (हरिद्वार) में जाय के महेश्वर दक्षेश्वर को नमस्कार करके आगे गयायात्रा के फल रक्षा निमित्त भैरव का पूजन करके ॥ ३४ ॥

केदारेशं च सम्पूज्य स्नात्वा तत्र यथाविधि ।
बदरीनाथभवनं नरनारायणस्थले ॥ ३५ ॥

देवप्रयाग रुद्रप्रयाग गुप्तकाशी होकर श्रीकेदारनाथ को गया यहाँ भी उसने केदार ज्योतिर्लिङ्ग का पूजन करके वहाँ विधिपूर्वक तीर्थस्नान करके बदरीनाथ के भवन नर-नारायण आश्रम में गया ॥ ३५ ॥

तत्रत्येषु च तीर्थेषु स्नातः सर्वकृतक्रियः ।
बदरीनाथभवनं गतवान् विष्णुतत्परः ॥ ३६ ॥

वहाँ के सब तीर्थों में स्नान और सम्पूर्ण तीर्थ कृत्य किये तब बदरीनाथजी के सूक्ष्मक्षेत्र में तत्पर हो गया ॥ ३६ ॥

प्रदक्षिणं च कृतवान् ननाम बहुशो हरिम् ।
प्रसादं बदरीशस्य भुक्तवांश्च मुदान्वितः ॥ ३७ ॥

भगवान् श्रीबदरीविशाल का दर्शन करके बहुत बार प्रणाम और परिक्रमा करी तथा प्रसन्नता से युक्त होके बदरीनारायण का प्रसाद पाया ॥ ३७ ॥

नमस्कृत्य पुनर्गेहमाययौ भक्तितत्परः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो बभूव विट्सुतस्तदा ॥ ३८ ॥

फिर नमस्कार करके भक्ति में तत्पर होके अपने घर आया, उस वक्त शंकरगुप्त वैश्य का पुत्र ब्रह्मदत्त बदरीनारायण की यात्रा के प्रभाव से समस्त पापों से अर्थात् ब्रह्महत्या चाण्डाली गमन, चोरी पापों से निर्मुक्त हो गया ॥ ३८ ॥

इति ते कथितं सर्वं यत्पृष्टोऽहं त्वया प्रिये ।

पुण्यं यशस्यमायुष्यं पुत्रीयं धनधान्यदम् ॥३६॥

हे प्रिये अरुन्धति ! जो तैंने बदरीनाथ माहात्म्य पूछा था सो सब तुझको कह दिया है । यह बदरीनाथ माहात्म्य पुण्य देनेवाला, यश को बढ़ानेवाला, पुत्र देनेवाला, धन और अन्न देनेवाला है ॥ ३६ ॥

सर्वे मनोरथास्तस्य पूर्णाः स्युर्नात्र संशयः ।
इदं माहात्म्यं यद्गेहे लिखितं वर्त्तते प्रिये ॥
चौराधिव्याधिराजाग्निग्रहभीर्न भवेत्कचित् ४०

जो यात्री इस माहात्म्य को सुनता है उसके संपूर्ण मनोरथ निस्सन्देह पूर्ण होते हैं और जिस घर में वह माहात्म्य लिखा रहता है, उस घर में चोर, मानसी व्यथा, रोग, राजा, अग्नि और ग्रहों का भय कदाचित् भी नहीं होती है ॥ ४० ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे केदारखण्डे वशिष्ठारुन्धतीसंवादे
श्रीबदरीनारायणमाहात्म्ये द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ द्वारका-माहात्म्यप्रारंभः ।

बदरीनाथ से १७० मील रामनगर रेल है ।

त्रिषु लोकेषु विख्याता धन्या वै द्वारकापुरी ।
परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो यत्र वासकृत् ॥१॥

तीनों लोक में द्वारकापुरी (पश्चिम में) सबसे श्रेष्ठ है और धन्य है जहां कि षोड़श कलावतार श्रीभगवान् कृष्ण निवास करते हैं ॥ १ ॥

ददावानर्तनृपतिं भगवान्भक्तवत्सलः ।

वैकुण्ठाच्च समुत्पाट्य भूखण्डं शतयोजनम् ॥ २॥

नारद बोले-भगवान् श्रीकृष्ण ने वैकुण्ठ लोक की सौ योजन भूमि उखाड़कर आनर्त देश के राजा शूरसेन को दी ॥ २॥

तस्माद्द्वारावतीं पुण्यां मोक्षद्वारं विदुः सुराः ।
सर्वतीर्थमयी भूमिः द्वारका नगरी शुभा ॥ ३ ॥

इसी कारण सम्पूण भूतल में देवता द्वारकापुरी को सर्वश्रेष्ठ और मोक्ष देनेवाली मानते हैं । द्वारका नगरी सम्पूर्ण तीर्थस्वरूपिणी है ॥ ३ ॥

आप्रभासात्तीर्थमयी मर्यादीकृत्य पुण्यदा ।
भूमिर्मोक्षप्रदा राजन्द्वारका योजनैः शतम् ॥४॥

प्रभासक्षेत्र तक मोक्ष देनेवाली द्वारकापुरी की सीमा मानी जाती है, जिसका विस्तार सौ योजन का है ॥ ४ ॥

द्वारकां नगरीं दृष्ट्वा नरो नारायणो भवेत् ।
द्वारकायां मृतः कोऽपि गर्दभोऽपि चतुर्भुजः ॥ ५ ॥

मनुष्य द्वारका नगरी के दर्शन करके नारायण स्वरूप हो जाता है। द्वारका में यदि गधे की भी मृत्यु हो तो वह भी मरने के अनन्तर नारायण का जैसा चतुर्भुज स्वरूप पाता है ॥ ५ ॥

तत्र राधामन्दिरस्य द्वारे लीलासरोवरम् ।
सर्वतीर्थोत्तमं तद्धि गोलोकाच्च समागतम् ॥ ६ ॥

उस द्वारका नगरी में श्रीराधाजी के मन्दिर के आगे एक क्रीडासरोवर है, जो सब तीर्थों से श्रेष्ठ है और गोलोक से आया हुआ है ॥ ६ ॥

आरभ्य चैत्रीं किल पौर्णमासीं
यो माधवीमेत्य करोति यात्राम् ।
तत्पुण्यसंख्यां गदितुं न शक्तः
चतुर्मुखो वेदमयो विधाता ॥ ७ ॥

जो चैत्र की पौर्णमासी से लेकर वैशाख की पौर्णमासी तक श्री द्वारकानगरी की यात्रा करता है, उसको जितना पुण्य प्राप्त होता है उसकी संख्या चतुर्मुख विधाता जो चारों वेदों को प्रकट करनेवाला है वह भी नहीं बता सकता ॥ ७ ॥

श्रीद्वारकानाथमिति स्वरूपं
पश्यन्ति ये भक्तजनाः कलौ युगे ।
गच्छन्ति ते विष्णुपदं नृदेव
योगीश्वराणामपि दुर्लभं च यत् ॥ ८ ॥

हे राजन् ! इस प्रकार जिसकी महिमा महर्षियों ने गाई है ऐसे श्रीद्वारकानाथ भगवान् के जो भक्त जन दर्शन करते हैं वे उस परम पद को प्राप्त होते हैं जो योगीश्वरों को भी दुर्लभ है ॥ ८ ॥

॥ इति गर्गाचार्यसंहितायां द्वारका-माहात्म्यम् ॥

अथ श्रीजगन्नाथ-माहात्म्यम् ।

पुरुषोत्तमाख्यं सुमहत्क्षेत्रं परमपावनम् ।
यत्रास्ते दारवतनुः श्रीशो मानुषलीलया ॥ १ ॥

सबमें श्रेष्ठ पुरुषोत्तम (जगन्नाथ पुरी) नामक एक पूर्व में

बड़ा क्षेत्र है जहां लक्ष्मीनाथ जगत्पति काष्ठ की मूर्ति में निवास करते हैं ॥ १ ॥

अथ वक्ष्ये सुरवरदर्शनस्य विधिं तदा।
मार्कण्डेयवटे रम्ये प्रथमं स्नानमाचरेत् ॥ २ ॥

श्रीसूतजी शौनकादिक ऋषियों से कहते हैं—हे मुनियो! अब मैं तुम्हें वहां श्रीभगवान् के दर्शन करने की विधि सुनाता हूं। रमणीय मार्कण्डेय वट में पहिले स्नान करे ॥ २ ॥

बलभद्रं सुभद्रां च जगन्नाथं सुदर्शनम्।
स्तुत्वा परमया भक्त्या प्रणमेद्दण्डवद्भुवि ॥ ३ ॥

तब बलभद्र, सुभद्रा और भगवान् जगन्नाथ की अत्यन्त भक्ति से पूजा करे अनन्तर स्तुति करके दण्डवत् प्रणाम करे ॥३॥

दर्शनान्ते ततो गच्छेत् श्वेतगंगां शुभोदयाम्।
प्रार्थयेत्परया भक्त्या सर्वपापप्रशान्तये ॥ ४ ॥

दर्शन करने के अनन्तर श्वेत गंगा के दर्शन करने को जावे और वहां सम्पूर्ण पापों के नाश के लिये परम भक्ति से प्रार्थना करे ॥ ४ ॥

व्रतेषु तीर्थेषु च यज्ञदानतः
पुण्यं यदुक्तं विमलात्मना हि तत्।
अहर्निवासाल्लभतेऽत्र सर्वं
निःश्वासवासात्खलु चाश्वमेधिकम् ॥ ५ ॥

शुद्ध मन से व्रत, तीर्थ, यज्ञ तथा दान करने का जो पुण्य

फल शास्त्रों में कहा है वह सब इस तीर्थ में एक रात्रि निवास करने से ही प्राप्त होता है। यदि एक पल भी यहां रहे तो अश्वमेध यज्ञ के फल को पाता है ॥ ५ ॥

जगन्नाथस्य नैवेद्यं महापातकनाशनम्।
भक्षणात्फलमाप्नोति कपिलाकोटिदानजम् ॥
कुक्कुरस्य मुखाद्भ्रष्टं तद् ग्राह्यं दैवतैरपि ॥ ६ ॥

श्रीभगवान् जगन्नाथजी का नैवेद्य भक्षण करने से अनेक महापापों का नाश होता है और करोड़ कपिला गौ का दान करने का फल प्राप्त होता है और यदि वह नैवेद्य कुत्ते के मुख से भी छूटा हो अर्थात् कुत्ते का झूठा किया भी हो तो भी वह पवित्र से पवित्र है, जिसे देवता भी प्रेम से भक्षण करते हैं ॥ ६ ॥ इति सूतसंहितायां नीलाद्रिमहोदये जगन्नाथ-माहात्म्यं समाप्तम्।

अथ सेतुबन्ध रामेश्वर-माहात्म्यम्

सूत उवाच।

अस्ति रामेश्वरं लिंगं रामसेतौ पवित्रितम्।
क्षेत्राणामपि सर्वेषां तीर्थानामपि चोत्तमम् ॥ १ ॥

सूतजी बोले–जहां भगवान् रामचन्द्रजी ने लंका पर चढ़ाई करने के लिये समुद्र पर पुल बांधा, उसके समीप श्रीरामेश्वर नामक महादेवजी का (दक्षिण में) रामेश्वर लिङ्ग है जो सम्पूर्ण उत्तम तीर्थों में भी उत्तम है ॥ १ ॥

दृष्टमात्रे रामसेतौ मुक्तिः संसारसागरात्।
हरे हरौ च भक्तिः स्यात्तथा पुण्यसमृद्धिता ॥२॥

श्रीरामेश्वर लिंग के दर्शन करने से ही मनुष्य संसार-सागर से मुक्त होता है। उसकी विष्णु और शिव में भक्ति बढ़ती है और पुण्य की भी वृद्धि होती है ॥ २ ॥

यो नरो जन्ममध्ये तु सेतुं भक्त्याऽवलोकयेत्।
तस्य पुण्यफलं वक्ष्ये शृणुध्वं मुनिपुंगवाः ॥३॥

जो मनुष्य जीवन भर में एक बार भी श्रीसेतुबन्ध रामेश्वरजी का दर्शन करता है (और गंगोत्तरी का गंगाजल चढ़ाता है) उसको जो पुण्य प्राप्त होता है, हे मुनीश्वरो! उसका वर्णन सुनो ॥ ३ ॥

मातृतः पितृतश्चैव द्विकोटिकुलसंयुतः।
निर्विश्य शम्भुना कल्पं ततो मोक्षं समश्नुते॥४॥

वह मातृकुल तथा पितृकुल के दो करोड़ पितरों सहित एक कल्प तक शिवलोक में निवास करके अनन्तर मोक्ष पाता है ॥ ४ ॥

सेतुस्नानकरो मर्त्यः सप्तकोटिकुलान्वितः।
सम्प्राप्य विष्णुभवनं तत्रैव परिमुच्यते ॥ ५ ॥

सेतुबन्ध में स्नान करनेवाला मनुष्य सात करोड़ पितरों के सहित वैकुण्ठ को प्राप्त होकर मोक्ष पाता है ॥ ५ ॥

सेतुरामेश्वरं लिंगं गन्धमादनपर्वतम्।

चिन्तयन्मनुजः सत्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥६॥

सेतुबन्ध में श्रीरामेश्वर लिङ्ग तथा गन्धमादन पर्वत में श्रीबदरीनारायण का स्मरण करता हुआ मनुष्य सम्पूर्ण पापों से मुक्त होता है, हे मुनिवरो ! यह सर्वथा सत्य है ॥ ६ ॥

नरकानि समस्तानि सेतुस्नायी न पश्यति ।
तेनैव रामनाथोऽस्मै प्रीतोऽभीष्टं प्रयच्छति ॥७॥
सन्ततिर्वर्धते तस्य पुरुषस्य द्विजोत्तमाः ।
संसारमवधूयाशु सायुज्यमपि यास्यति ॥८॥

सेतुबन्ध में स्नान करनेवाला किसी भी नरक को नहीं प्राप्त होता है । श्रीभगवान सदा शिव रामेश्वर केवल दर्शन से ही प्रसन्न होकर मनवाञ्छित फल देते हैं, हे मुनीश्वरो ! उस पुरुष की वंशवृद्धि होती है और अन्त में वह संसार को जीतकर सायुज्य मुक्ति को पाता है ॥ ७ । ८ ॥ इति स्कन्द पुराणे रामेश्वर-माहात्म्यम् ॥

सरस्वती नः सुभगा
NEPAL SANSKRIT

अथसर्वतीर्थश्राद्धपद्धतिप्रारम्भः

तत्रादौ तीर्थस्नानविधिः *।

श्रीगणेशाय नमः ॥ तत्र यात्री तीर्थे गत्वा हस्तौ पादौ प्रक्षाल्य आचम्य क्षेत्रेशं नमस्कुर्यात्—

ॐ नमो देवाधिदेवाय शितिकण्ठाय दण्डिने ।
रुद्राय चापहस्ताय चक्रिणे वेधसे नमः ॥ १ ॥
ॐ सरस्वती च सावित्री वेदमाता गरीयसी ।
सन्निधाना भवत्वत्र तीर्थपापप्रणाशिनी ॥ २ ॥
तीक्ष्णदंष्ट्र महाकाय कल्पान्तदहनोपम ।
भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि ॥ ३ ॥

अमुकतीर्थाय नमः इति ताम्बूलं फलं द्रव्यं पुष्पं च समर्प्य ॥ अमंत्रकं (मुशल) स्नानं कृत्वा वपनमंत्रान्पठेत्—

ॐ आत्मनः शुद्धिकामो वा पितॄणां मुक्तिहेतवे ।
वपनं कारयिष्यामि तीरेऽहं तव जाह्नवि ॥ १ ॥

---

* प्रभासखंडे यानानि तु परित्यज्य भाव्यं पादचरैर्नरैः ।
मार्गेऽन्तरा नदीप्राप्तौ स्नानादि परपारतः ॥
अर्वागेव सरस्वत्या एष मार्गगतो विधिः ॥ १ ॥

अत्र विशेषः—दशमासोत्तरं पुनस्तीर्थप्राप्तौ मुण्डनादितीर्थविधिः । स्कन्ददेवलौ—मुण्डनं चोपवासश्च सर्वतीर्थेष्वयं विधिः ।
वर्जयित्वा कुरुक्षेत्रं विशालां विरजं गयाम् ॥

कौर्मे—सहाग्निर्वा सपत्नीको गच्छेत्तीर्थानि संयतः ।
प्रायश्चित्ती व्रती तीर्थं पत्नीविरहितोऽपि वा ॥

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च।
केशानाश्रित्य तिष्ठन्ति तस्मात्केशान् वपाम्यहम्॥२
महापापोपपापोत्थाः केशलोमनखादिजाः।
क्षुरेणोच्छिन्नसर्वाङ्गास्ते मे दोषाः पतन्त्वधः॥३॥

इति मुण्डनं कुर्यान्न पर्वादिसमयं विचारयेत्। शुद्धिस्नानं विधाय—

ॐ अद्य स्थित्वा निराहारः सर्वभोगविवर्जितः।
श्वो भोक्ष्ये पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाऽच्युत॥

इति प्रतिज्ञां कृत्वा तीर्थप्राप्तिदिवसे उपवासः कर्तव्यः। मुण्डनं तु तीर्थप्राप्तिदिवसे तद्द्वितीयदिवसे वा कुर्यात् *। संकल्पः—

कुशतिलयवजलान्यादाय—ॐ नमःपरमात्मने श्रीपुराणपुरुषोत्तमाय श्रीमदादिनारायणस्याऽचिन्त्याऽपरिमिताऽनन्तशक्तिसमन्वितस्य ब्रह्माण्डान्तर्गतभूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक, सत्यलोकाख्यानां सर्वज्ञसर्वशक्तिसमन्वितश्रीचतुर्मुखप्रभृति स्वस्वलोकाधिष्ठातृपुरुषाधिष्ठितानामधोभागे महीमण्डलान्तर्गतातल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसा-

---

*** भारते**—ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा राजसत्तमः।
न वियोनिं व्रजन्त्येते स्नानात्तीर्थे महात्मनः॥
अर्धं तीर्थफलं तस्य यः प्रसंगेन गच्छति।
मार्कण्डेयपुराणे—मातरं पितरं जायां भ्रातरं सुहृदं गुरुम्॥
यमुद्दिश्य निमज्जेत अष्टमांशं लभेत सः।
यश्चान्यत्कारयेच्छक्त्या तीर्थयात्रां नरेश्वरः॥
स्वकीयद्रव्यदानेन तस्य पुण्यं चतुर्गुणम्॥

तल, पातालानां स्वस्वाधिष्ठात्रधिष्ठितानामुपरितने भागे सुमेरु-पर्वतादिसप्तपर्वतशोभिते जम्बू, प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौञ्च, शाक, पुष्कराख्यसप्तद्वीपवत्यां लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिक्षीरशुद्धोद-काख्यसप्तसागरयुतायां वसुमत्यां, उत्तरकुरु, हिरण्मय, रम्यका भद्राश्व, केतुमाल, इलावृत, हरिवर्ष, किंपुरुष, भारताख्यनव-खण्डवति जम्बूद्वीपे महाराष्ट्र, द्रविड़, तैलंग, कान्यकुब्ज, गौड़, मैथिल, नेपाल, कूर्माचल, केदारखण्ड, जालन्धर, काश्मीर-प्रभृति बहुविधदेशविशेषसम्पन्ने नैमिषारण्यादिद्वादशारण्ययुते गङ्गा, यमुनाऽलकनन्दा, मन्दाकिनी, सरस्वती, गोदावरी, नर्मदा, सरयू, फल्गुप्रभृत्यनेकमदनदीवति कुरुक्षेत्रादिबहुक्षेत्रान्विते द्वादशज्योतिर्लिङ्गविराजिते, अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्चि, अवन्तिका, द्वारावतीति सप्तपुरीशोभिते सेतुबन्धरामेश्वर, जगन्नाथ, बदरीनाथ, द्वारिकानाथेति चतुर्धामप्रतिष्ठिते जम्बूद्वीपे नवसहस्रयोजनविस्तीर्णे भारतवर्षे निखिलजनपावन-परमभाग-वतोत्तमशौनकाद्यध्युषिते नैमिषारण्ये, आर्यावर्तान्तर्गतब्रह्मावर्त्तैक-देशे श्रीब्रह्मणो द्वितीये परार्धे एकपञ्चाशत्तमे वर्षे प्रथममासे प्रथमपक्षे प्रथमदिवसे, अह्नो द्वितीये यामे तृतीये मुहूर्त्ते रथन्तरादि-द्वात्रिंशत्कल्पानां मध्ये अष्टमे श्वेतवाराहकल्पे स्वायंभुवादिचतुर्दश-मन्वन्तराणां मध्ये सप्तमे वैवस्वतमन्वन्तरे चतुर्णां युगानां मध्ये वर्तमाने, अष्टाविंशतितमे कलियुगे प्रथमचरणे मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, रामचन्द्र, बलभद्र, कृष्ण,

बौद्ध, कल्कीति दशावतारमध्ये नवमे बौद्धावतारे युधिष्ठिरादि-षट्शककारकनृपतीनां मध्ये वर्त्तमाने विक्रमादित्यवत्सरे षष्टि-संवत्सराणां मध्ये, अमुकनाम्नि संवत्सरे, अमुकायने, अमुकर्तौ, अमुकमासे, अमुकपक्षे, अमुकतिथौ, अमुकवासरे, अमुकराशि-स्थिते सूर्ये चन्द्रे देवगुरौ शेषेषु ग्रहेषु यथायथा राशिस्थानस्थि-तेषु, अमुक गोत्रामुकशर्मा, वर्मा, गुप्तः दासः वा अहं ममेह-जन्मनि जन्मान्तरे वा बाल्ययौवनवार्द्धक्यावस्थाकृतकायिकवाचिक-मानसिकज्ञाताज्ञातमहापातकोपपातकादि सकलपापक्षयपूर्वक-माधिदैविकाधिभौतिकाध्यात्मिकत्रिविधतापोपशमनार्थं सकलपितृुद्धारपूर्वकश्रुतिस्मृतिपुराणोक्तसत्फलप्राप्तये, अमुकतीर्थे * अमुकगङ्गास्नानमहं करिष्ये ॥ प्रार्थयेत्--

महापापोपपापादि नानायोनिषु यत्कृतम् ।
बाल्यादिभावे यत्पापं क्षुत्तृडर्थे च यत्कृतम् १
आत्मार्थं चैव यत्पापं परार्थे चैव यत्कृतम् ।

---

* हारीतः-दिवा वा यदि वा रात्रौ भुक्तो वोपोषितोऽपि वा ।
न कालनियमस्तत्र गङ्गां प्राप्य सरिद्वराम् ॥
पृथ्वीचन्द्रोदये-अकालेऽप्यथवा काले तीर्थश्राद्धं च तर्पणम् ।
अविलम्बेन कर्तव्यं नैव विघ्नं समाचरेत् ॥
प्रभासखण्डे-न वारं न च नक्षत्रं न कालस्तत्र कारणम् ।
यदैव दृश्यते तीर्थं तदा पर्वसहस्रकम् ॥
यदह्नि तीर्थप्राप्तिः स्यात्तदह्नः पूर्ववासरे ॥
मरीचिः-उपवासः प्रकर्तव्यः प्राप्तेऽह्नि श्राद्धदो भवेत् ।
तीर्थेषु ब्राह्मणं नैव परीक्षेत कदाचन ॥
उशना-द्वौ हस्तौ युग्मतः कृत्वा पूरयेदुदकाञ्जलिम् ।
गोशृङ्गमात्रमुद्धृत्य जलमध्ये जलं क्षिपेत् ॥

तीर्थेषु चैव यत्पापं गुर्ववज्ञाकृतं च यत् ॥ २ ॥
रागद्वेषादिजनितं कामक्रोधेन यत्कृतम् ।
हिंसानिद्रादिजं पापं भेददृष्ट्या च यन्मम ॥३॥
देहाभिमानजं पापं सर्वदा यन्मया कृतम् ।
भूतं भव्यं भविष्यं च यत् पापं मम जाह्नवि ४
शुष्कमार्द्रं च यत्पापं जानताऽजानता कृतम् ।
महल्लघु च यत्पापं तन्मे नाशय जाह्नवि ॥ ५ ॥
मनसा कर्मणा वाचा यत्पापं च मया कृतम् ।
तस्मादशेषपापौघात्राहि जाह्नवि सर्वदा ॥ ६ ॥

इति नाभिमात्रतीर्थजलं प्रविश्य प्रवाहाभिमुखः पूर्वाभिमुखो वा स्थित्वा * स्नायात् । तत्र मन्त्रः—

ॐ आपोऽअस्मान्न्मातर÷शुन्धयन्तु घृतेन नोघृतप्प्व÷पुनन्तु । विश्श्व ँ हि रिप्प्रम्प्रवह-

---

* वपनं मैथुनं तीर्थं वर्जयेत् गर्भिणीपतिः ।
श्राद्धं च सप्तमान्मासादूर्ध्वं चान्यत्र वेदवित् ॥
मीने मेषे स्थिते सूर्ये कन्यायां कार्मुके घटे ।
दुर्लभं त्रिषु लोकेषु गयायां पिण्डपातनम् ॥
जीवतो वाक्यकरणात्क्षयाहे भूरि भोजनात् ।
गयायां पिण्डदानाच्च त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता ॥
अन्वाष्टकासु वृद्धौ च गयायां च क्षयेऽहनि ।
मातुः श्राद्धं पृथक् कुर्यादन्यत्र पतिना सह ॥
इति याज्ञवल्क्यः ।

न्ति देवीः ॥ इति मंत्रेण निमज्य पुनः ॐ उदि-द्वाभ्य ं शुचिरापूतऽएमि ॥

इति मंत्रेण द्वितीयवारं निमज्य पुनस्तूष्णीं निमज्याऽचम्य पुनः प्रार्थयेत्––

ॐ गतं पापं गतं दुःखं गतं मे व्याधिबन्धनम् ।
निष्पापोऽस्म्यधुना देवि प्रसादात्तव जाह्नवि ॥

उत्तीर्य धौते वाससी परिधाय स्नानवस्त्राणि तीर्थवासिने ब्राह्मणाय दद्यात् । यावत्तर्पणं न कुर्यात्तावत्स्नानवस्त्राणि न प्रक्षालयेत् । सन्ध्यादेवपूजनादि नित्यकर्म विधाय गङ्गां पूजयेत्–– अर्घ्यं संस्थाप्य प्राणानायम्य अद्येत्यादि० अमुकशर्माहं सकलपापक्षयपूर्वकं श्रुत्याद्युक्तफलावाप्तयेऽमुक-क्षेत्रेऽमुकगङ्गायाः पूजनं करिष्ये ।

ध्यानम्––

ॐ सितमकरनिषण्णां शुभ्रवर्णां त्रिनेत्रां
करधृतकलशोद्यत्सोत्पलाभीत्यभीष्टाम् ।
विधिहरिहररूपां सेन्दुकोटीरचूडां
कलितसितदुकूलां जाह्नवीं तां नमामि ॥

ॐ गङ्गायै नमः इति नाममंत्रैः पाद्यगन्धाक्षतादिभिः सम्पूज्य ॥ द्वादशनामभिः पूजयेत्––ॐ भगवत्यै नमः ॐ नारायण्यै नमः ॐ दशविधिपापहरायै नमः ॐ गङ्गायै नमः ॐ विश्वजनन्यै नमः ॐ अमृतायै नमः ॐ दक्षायै नमः ॐ शिवायै नमः ॐ रेवत्यै नमः ॐ बृहत्यै नमः ॐ नन्दिन्यै नमः ॐ तारायै नमः ॥

अथ प्रार्थना—

ॐ सद्यः पातकसंहर्त्री सद्यो दुःखविनाशिनी ।
सुखदा मोक्षदा गङ्गा गंगैव परमा गतिः ॥ १ ॥
गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि ॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥२॥

अर्घ्यं दद्यात्—

ॐ ब्रह्मपात्रसमुद्भूते गङ्गे त्रिपथगामिनि ।
त्रैलोक्यवन्दिते देवि गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥

* अथ तर्पणप्रयोगः—तत्र कर्ता श्राद्धभूमौ पूर्वमुख उप-

---

* तर्पणविचारः—ताताम्बात्रितयं सपत्नजननी मातामहादित्रय
सस्त्रीस्तनयादितातजननी स्वभ्रातरः सस्त्रियः ।
ताताम्बाऽत्मभगिन्यपत्यधवयुक् जाया पिता सद्गुरुः
शिष्याप्ताः पितरो महालयविधौ तीर्थे तथा तर्पणे ॥

सप्तगोत्राणि—पितुर्मातुश्च भार्याया भगिन्या दुहितुस्तथा ।
पितृष्वसा मातृष्वसोर्गोत्राणां सप्तकं स्मृतम् ॥

तर्पणपात्राणि—हैमं रौप्यमयं पात्रं ताम्रं कांस्यसमुद्भवम् ।
पितृणां तर्पणे पात्रं मृण्मयं तु परित्यजेत् ॥

मरीचिः—विना रौप्यसुवर्णेन विना ताम्रमयेन वा ।
विना तिलैश्च दर्भैश्च पितृणां नोपतिष्ठते ॥

याज्ञवल्क्यः—अनामिका धृतं हेम तर्जन्यां रूप्यमेव च ।
कनिष्ठिकाधृतं खड्गं तेन पूतो भवेन्नरः ॥

यमः—समूलस्तु भवेद्दर्भः पितृणां श्राद्धकर्मणि ।
मूलेन लोकाञ्जयति शक्रस्य तु महात्मनः ॥

अत्रिः—अनामिका मूलदेशे पवित्रं धारयेद्द्विजः ॥

मनुः—अंगुष्ठमूलस्य तले ब्राह्मं तीर्थं प्रचक्षते ।
कायमङ्गुलिमूलेऽग्रे दैवं पित्र्यं तयोरधः ॥

विश्याऽचम्य प्राणानायम्य एकवारं दिने तर्पणं कर्तव्यं, स्वदक्षिण-हस्तानामिकायां समूलकुशपवित्रं धारयेत् कर्मपात्रं संस्थाप्य गन्धपुष्पकुशाक्षतादि निक्षिप्य ॐ अपवित्रः पवित्रो वेति सम्प्रोक्ष्य, कुशतिलयवजलान्यादाय संकल्पं कुर्यात्——ॐ विष्णुः ३ नमः परमात्मने पुराणपुरुषोत्तमाय श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णो-राज्ञया प्रवर्तमानस्याद्य ब्रह्मणो द्वितीयपरार्धे श्वेतवाराह-कल्पे वैवस्वतमन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे तत्प्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे भारतवर्षे आर्यावर्त्तान्तर्गतक्षेत्रे प्रभवादिषष्टि-संवत्सराणां मध्येऽमुकसंवत्सरेऽमुकायनेऽमुकर्त्तावमुकमासेऽमुकपक्षे-ऽमुकतिथावमुकवासरेऽमुकगोत्रोऽमुकशर्म्माहं अस्मत्पितृपितामह-प्रपितामहानाममुकामुकशर्म्मणां वसुरुद्रादित्यस्वरूपाणां सपत्नी-कानाम् तथामुकगोत्राणाम् अस्मन्मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमाता-महानाम् अमुकामुकशर्म्मणां वसुरुद्रादित्यस्वरूपाणां सपत्नीकानाम-क्षयतृप्तिपूर्वकपितॄणां निरतिशयानन्दब्रह्मलोकावाप्तये ममात्मनः श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासोक्तसत्फलप्राप्त्यर्थं ॐ तत्सत्परब्रह्मप्रीतये

व्यासः—एकैकमंजलिं देवा द्वौ द्वौ तु सनकादयः ।

गृह्णन्ति पितरस्त्रींस्त्रीन्स्त्रियस्त्वेकैकमञ्जलिम् ।

माता पितामही चैव तथैव प्रपितामही

एतासां पितृवद्दद्याच्छेषास्त्वेकैकमञ्जलिम् ॥

देवेन देवान् देवर्षीन् कायेन सनकादिकान् ।

पित्र्येण पितॄँस्तीर्थेन तर्पयेद्विधिवन्नरः ॥ काय=प्रजापति ।

स सुरर्षीन्सुरान्पूर्वे सनकादींस्तथोत्तरे

साग्निष्वात्तादिकान्पितॄन् दक्षिणे तर्पयेन्नरः ॥

अमुकतीर्थे (वा० महालय परपक्षे) देवर्षिमनुष्यपितृतर्पणमहं करिष्ये । ॐ देवताभ्य इति त्रिः पठेत् ।

ॐ विश्वेदेवासऽआगत शृणुताम ऽइमᳪंहवम् । इदं बर्हिन्निषीदत ॥

इति भूमौ रौप्यताम्रकांस्यादिपात्रोपरि प्रागग्रान् कुशानास्तीर्य देवानावाहयेत् । जले तर्पणे आर्द्रवासा जलमध्ये जलं क्षिपेत् । स्थलतर्पणे तु शुष्कवासा रौप्यादिपात्रास्तीर्णकुशेषु अञ्जलिप्रक्षेपः । अञ्जलिं बद्ध्वा—ॐ भूर्भुवः स्वः गणपत्यादयो देवा इहागच्छन्तु इह तिष्ठन्तु गृह्णन्त्वेताञ्जलाञ्जलीन् । ततः कुशजलयवेन * अथवाशुक्लतिलमिश्रितोदकेन देवतीर्थेन देवान्सव्येनैकैकमञ्जलिं पूरयित्वा प्रतिपदं दद्यात् । तद्यथा — ॐ गणपतिस्तृप्यताम् ॐ ब्रह्मा तृप्यताम् ॐ विष्णुस्तृप्यताम् ॐ रुद्रस्तृप्यताम् ॐ प्रजापतिस्तृप्यताम् ॐ देवास्तृप्यन्ताम् ॐ छन्दांसिᳪं *तृप्यन्ताम्

---

* यवैर्देवान् सदेवर्षींस्तण्डुलैः सनकादिकान् ।
तिलैः पितृगणान्सर्वांस्तर्पयेद्वारिणा सह ॥

गोभिलः—तिलाभावे निषिद्धाहे सुवर्णरजतान्वितम् ।
तदभावे निषिद्धे तु दर्भमन्त्रेण वा पुनः ॥

वृद्धमनुः—सप्तम्यां भानुवारे च मातापित्रोः क्षयेऽहनि
तिलैर्यस्तर्पणं कुर्यात्स भवेत्पितृघातकः ॥

पृथ्वीचन्द्रोदये—तीर्थे तिथिविशेषे च गयायां प्रेतपक्षके ।
निषिद्धेऽपि दिने कुर्यात्तर्पणं तिलमिश्रितम् ॥

मनुः—वसवः पितरो ज्ञेया रुद्रा ज्ञेयाः पितामहाः ।
प्रपितामहास्तथादित्याः श्रुतिरेषा सनातनी ॥

ॐ वेदास्तृप्यन्ताम् ॐ ऋषयस्तृप्यन्ताम् ॐ पुराणाचार्यास्तृप्यन्ताम् ॐ गन्धर्वास्तृप्यन्ताम् ॐ इतराचार्यास्तृप्यन्ताम् ॐ सँव्वत्सरः सावयवस्तृप्यताम् ॐ देव्यस्तृप्यन्ताम् ॐ अप्सरसस्तृप्यन्ताम् ॐ देवानुगास्तृप्यन्ताम् ॐ नागास्तृप्यन्ताम् ॐ सागरास्तृप्यन्ताम् ॐ पर्व्वतास्तृप्यन्ताम् ॐ सरितस्तृप्यन्ताम् ॐ मनुष्यास्तृप्यन्ताम् ॐ यक्षास्तृप्यन्ताम् ॐ रक्षांसि तृप्यन्ताम् ॐ पिशाचास्तृप्यन्ताम् ॐ सुपर्णास्तृप्यताम् ॐ भूतानि तृप्यन्ताम् ॐ पशवस्तृप्यन्ताम् ॐ वनस्पतयस्तृप्यन्ताम् ॐ ओषधयस्तृप्यन्ताम् ॐ भूतग्रामश्चतुर्विधस्तृप्यताम्। इति देवतर्पणम्।

ततो यज्ञोपवीतं मालाकारं कृत्वा उत्तराभिमुखः प्राजापतितीर्थेनाक्षत कुशजलेन वा *शुक्लतिलोदकेन प्रतिपदं द्वौ द्वौ अञ्जली सनकादिभ्यो दद्यात्——ॐ भूर्भुवः स्वः सनकादयः सप्त मनुष्या इहागच्छन्तु इह तिष्ठन्तु गृह्णन्त्वेतान् जलाञ्जलीन्। इत्यावाह्य तर्पयेद्यथा——

ॐ सनकस्तृप्यताम् ॐ सनन्दनस्तृप्यताम् ॐ सनातनस्तृप्यताम् ॐ कपिलस्तृप्यताम् ॐ आसुरिस्तृप्यताम् ॐ वोढुस्तृप्यताम् ॐ पञ्चशिखस्तृप्यताम्। इति मनुष्यतर्पणम्।

हेमाद्री ब्रह्मपुराणे——पुनः पूर्वाभिमुखो यज्ञोपवीतं सव्यं धृत्वा यवैः शुक्लतिलैर्वा देवतीर्थेनैकैकमञ्जलिं प्रतिपदं मरीच्यादिभ्य

---

* श्राद्धप्रकाशे—शुक्लैस्तु तर्पयेद्देवान् मनुष्याञ्छबलैस्तिलैः।
पितॄँस्तु तर्पयेत्कृष्णैस्तर्पणे सर्वदा द्विजः॥
नास्तिक्यादथवा लौल्यान्न तर्पयति वै सुतः।
पिबन्ति देहनिःस्रावं पितरोऽस्य जलार्थिनः।

ऋषिभ्यो दद्यात् । ॐ भूर्भुवः स्वः मरीच्यादय ऋषयः इहागच्छन्तु इह तिष्ठन्तु गृह्णन्त्वेतान्जलाञ्जलीन् । * तर्पयेत्--

ॐ मरीचिस्तृप्यताम् ॐ अत्रिस्तृप्यताम् ॐ वशिष्ठस्तृप्यताम् ॐ अंगिरास्तृ० ॐ पुलहस्तृ० ॐ पुलस्त्यस्तृ० ॐ क्रतुस्तृ० ॐ प्रचेतास्तृ० ॐ भृगुस्तृ० ॐ भारद्वाजस्तृ० ॐ अगस्तिस्तृ० ॐ मार्कण्डेयस्तृ० ॐ कश्यपस्तृ० ॐ यमदग्निस्तृ० ॐ नारदस्तृ० ॐ नारदाद्याः सर्वे ऋषयः तृप्यन्ताम्, [एवं मरीच्याद्यृषितर्पणं क्वचिद्दृश्यते न तु सूत्रे, इति ऋषितर्पणम्]

ततोऽपसव्येन पातितवामजानुः दक्षिणाभिमुखो द्विगुणसमूल-कुशेन पितृतीर्थेन दुग्धमिश्रितोदकेन कृष्णतिलैः पितृभ्यस्त्रींस्त्री-नञ्जलीन् दद्यात् ॐ भूर्भुवः स्वः कव्यवाडनलादयो दिव्यपितर

तस्मात्सदैव कर्तव्यमकुर्वन् महदेनसा
युज्यते ब्राह्मणः कुर्वन् विश्वमेतत् बिभर्त्ति हि ॥
हेम्ना तु सह यद्दत्तं क्षीरेण मधुना सह ।
तदप्यक्षयतां याति पितृणां तु तिलोदकम् ॥

* उपवीती गणेशादीन् निवीती सनकादिकान् ।
प्राचीनावीत्यथपितॄँस्तर्पयेत्तीर्थवारिणा ॥
अग्रैस्तु तर्पयेद्देवान् मनुष्यान् कुशमध्यतः ।
पितॄँस्तु कुशमूलाग्रैः विधिः कौशे यथाक्रमम् ॥

तर्पणाऽकरणे दोषः—देवताश्च मुनींश्चैव पितॄन् वै यो न तर्पयेत् ।
देवादीनामृणीभूत्वा नरकं स व्रजत्यधः ॥

कात्यायनः—दक्षिणं पातयेज्जानुं देवान्परिचरन्सदा ।
पातयेदितरं जानुं पितॄन्परिचरन्सदा ॥

इहागच्छन्तु इह तिष्ठन्तु गृह्णन्त्वेतान् जलाञ्जलीन् ॐ कव्यवाडन लस्तृप्यताम् ॐ सोमस्तृप्यताम् ॐ यमस्तृप्यताम् ॐ अर्यमास्तृप्यताम् ॐ अग्निष्वात्ता: पितरस्तृप्यन्ताम् ॐ सोमपा:पितरस्तृप्यन्ताम् ॐ बर्हिषद: पितरस्तृप्यन्ताम् ॥

ॐ भूर्भुव: स्व: यमादयश्चतुर्दश यमा इहागच्छन्तु इह तिष्ठन्तु गृह्णन्त्वेतान् जलाञ्जलीन् । ॐ यमाय नम: ॐ धर्मराजाय नम: ॐ मृत्यवे नम: ॐ अन्तकाय नम: ॐ वैवस्वताय नम: ॐ कालाय नम: ॐ सर्वभूतक्षयाय नम: ॐ औदुम्बराय नम: ॐ दध्नाय नम: ॐनीलाय नम: ॐपरमेष्ठिने नम: ॐवृकोदराय नम: ॐ चित्राय नम: ॐ चित्रगुप्ताय नम: इति यमतर्पणम् ॥

ॐ भूर्भुव: स्व: अस्मत्पितर इहागच्छन्तु इह तिष्ठन्तु गृह्णन्त्वेतान् जलाञ्जलीन् ।

ॐ उदीरतामवरऽउत्परासऽउन्मध्यमा: पितर: सोम्यास: असुंय्यऽईयुरवृकाऽऋतज्ञास्ते नोवन्तु पितरो हवेषु ॥ १ ॥

ॐ अङ्गिरसो न: पितरो नवग्वाऽअथर्वाणो भृगव: सोम्यास: । तेषां वय ँ सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ २ ॥

ॐ आयन्तु न: पितर: सोम्यासोग्निष्वात्ता: पथिभिर्देवयानै: । अस्मिन्यज्ञे स्वधया मदन्तोधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ ३ ॥

ॐ ऊर्ज्जं व्वहन्तीरमृतङ्घृतम्पयः कीलालं परिस्रुतम् । स्वधास्थ तर्प्पयत मे पितॄन् ॥ ४ ॥

ॐ पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः । अक्षन्पितरोमीमदन्तपितरोतीतृप्यन्तपितरः पितरः शुन्धध्वम् ॥ ५ ॥

ॐ ये चेह पितरो ये च नेह याँश्च विद्म याँ२ऽउ च न प्रविद्म त्वं व्वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्य्यज्ञꣳ सुकृतञ्जुषस्व ॥ ६ ॥

ॐ मधुव्वाताऽऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्न्नः सन्त्वोषधीः ॥ ७ ॥

ॐ मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवꣳ रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥ ८ ॥

ॐ मधुमान्नो व्वनस्पतिर्म्मधुमाꣳऽअस्तु सूर्य्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ ९ ॥

इति प्रत्यृचं प्रसेकमञ्जलिना जलधारां कुर्यात् ।

अद्येत्यादि० अमुकगोत्रोऽस्मत्पिता अमुकशर्मा वसुस्वरूपस्तृप्यताम् इदं तिलमिश्रितजलं तस्मै स्वधा इति त्रिवारम् ॥

अद्यामुकगोत्रोऽस्मत्पितामहः अमुकशर्मा रुद्रस्वरूपस्तृप्यताम् इदं तिलमिश्रित० ३ ॥

अद्यामुकगोत्रोऽस्मत्प्रपितामहः अमुकशर्मा आदित्यस्वरूपस्तृप्यताम् इदं तिल० ३ ॥

अद्यामुकगोत्राऽस्मन्माता अमुकदेवी गायत्रीस्वरूपा तृप्यताम् इदं तिलमिश्रितजलं तस्यै स्वधा इति त्रिवारम् ॥

अद्यामुकगोत्राऽस्मत्पितामही अमुकदेवी सावित्रीस्वरूपा तृप्यताम् इदं तिल० ३ ॥

अद्यामुकगोत्राऽस्मत्प्रपितामही अमुकदेवी सरस्वतीस्वरूपा तृप्यताम् इदं तिल० ३ ॥

ॐ नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरः शोषाय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरः स्वधायै नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो मन्यवे। नमो वः पितर पितरो नमो वो गृहान्नः पितरो दत्त सतो वः पितरो देष्मैतद्वः पितरोऽवास ॥

अद्येत्यादि० अमुकगोत्रोऽस्मन्मातामहः अमुकशर्मा सपत्नीको वसुस्वरूपस्तृप्यताम् इदं जलं सतिलं तस्मै स्वधा ३ ॥

अद्यामुकगोत्रोऽस्मत्प्रमातामहोऽमुकशर्मा सपत्नीको रुद्रस्वरूपस्तृप्यताम् इदं० ३ ॥

अद्याऽमुकगोत्रोऽस्मद्वृद्धप्रमातामहोऽमुकशर्मा सपत्नीक आदित्यस्वरूपस्तृप्यताम् इदं तिलमिश्रितजलं तस्मै स्वधा ॐ तृप्यध्वम् ३॥

एवं क्रमेण सापत्नमातुः ज्येष्ठपितृव्यस्य, कनिष्ठपितृव्यस्य। ज्येष्ठभ्रातुः, कनिष्ठभ्रातुः, गुरोः, मातुलस्य, श्वशुरस्य, पितृष्वसुः,

मातृस्वसुः, भगिन्याः, मित्रस्य, पुत्रस्य, कन्यायाः, पत्न्याः, जामातुः, शिष्यस्य, बान्धवानां च तर्पणं कार्यम् ॥

ॐ आचार्यास्तृप्यन्ताम् ॐ गुरवस्तृप्यन्ताम् ॐ शिष्यास्तृप्यन्ताम् ॐ बान्धवास्तृप्यन्ताम् ॐ ज्ञातयस्तृप्यन्ताम् ॥ इत्येकैकाञ्जलिं दत्वाऽवसानाञ्जलिं दद्यात् ॥

ॐ मातृवंशे मृता ये च पितृवंशे च ये मृताः ।
गुरुश्वशुरबन्धूनां ये चान्ये बान्धवा मृताः ॥
नरकेषु समस्तेषु यातनासु च संस्थिताः ।
तेषामाप्यायनायैतद्दीयते सलिलं मया ॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः ।
तृप्यन्तु पितरः सर्वे मातृमातामहादयः ॥
अतीतकुलकोटीनां सप्तद्वीपनिवासिनाम् ।
आब्रह्मभुवनाल्लोकादिदमस्तु तिलोदकम् ॥
येऽबान्धवा बान्धवा ये येऽन्यजन्मनि बान्धवाः ।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु मद्दत्तेन तिलाम्बुना ॥

ततो * यज्ञोपवीतं निष्पीडयेत्—

ये चास्माकं कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणो मृताः ।

---

* बृहत्पराशरः—निष्पीडयति यः पूर्वं स्नानवस्त्रमतर्पिते ।
निराशाः पितरो यान्ति शापं दत्वा सुदारुणम् ॥
बौधायनः—शर्मान्तं ब्राह्मणस्योक्तं वर्मान्तं क्षत्रियस्य तु ।
गुप्तान्तं चैव वैश्यस्य दासान्तं शूद्रजन्मनः ॥

ते पिबन्तु मया दत्तं सूत्रनिष्पीडनोदकम् ॥

"यदि गृहे मृततिथौ सांवत्सरिकश्राद्धादि कर्म स्यात्तर्हि सूत्रनिष्पीडनं न कुर्यात् ॥" सव्येनाचम्य--

पूर्वमुखः--ऊर्ध्वे ब्रह्मणे नमः । अधोऽनन्ताय नमः ॐ कूर्म्माय नमः ॐ पृथिव्यै नमः ॐ शेषाय नमः ॐ गणपतये नमः ॐ विष्णवे नमः ॐ रुद्राय नमः ॐ इन्द्राय नमः ॐ वास्तोष्पतये नमः ॐ श्रियै नमः ॐ सूर्य्याय नमः ।

एहि सूर्य्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते ।
अनुकम्पय मां भक्त्या गृहाणाऽर्घ्यं दिवाकर ।

व्यासः—शुक्लाष्टम्यां तु माघस्य दद्याद्भीष्माय यो जलम् ।
संवत्सरकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥

स्कान्दे—दीपोत्सवचतुर्दश्यां सव्येन यमतर्पणम् ॥

अथ भीष्मतर्पणम्—कार्तिकशुक्लैकादशीप्रभृतिपञ्चदिनेषु माघशुक्लाष्टम्यादिषु वा कुर्यात् । तत्र मन्त्रौ—

ॐवैयाघ्रपादगोत्राय सांकृत्यप्रवराय च ।
गंगापुत्राय भीष्माय प्रदास्येऽहं तिलोदकम् ॥
वसूनामवताराय शन्तनोरात्मजाय च ।
अपुत्राय ददाम्येतज्जलं भीष्माय तर्पणम् ॥ इति ॥

व्यासः—तर्पणं द्विविधं प्राहुर्मुनयः शंसितव्रताः ।
एकं जले स्थितः कुर्यादपरं तु स्थले स्थितः ॥

विष्णुः—स्थले स्थित्वा जले यस्तु प्रयच्छेदुदकं नरः ।
नोपतिष्ठति तद्वारि पितॄणां तन्निरर्थकम् ॥

मात्स्ये—सम्बन्धं प्रथमं ब्रूयाद्गोत्रं नाम तथैव च ।
पश्चाद्रूपं विजानीयात्क्रम एष सनातनः ॥

इत्यर्घ्यत्रयं दद्यात् ।

जपाकुसुमसंकाशं काश्यपेयं महाद्युतिम् ।
ध्वान्तारिं सर्वपापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम् ॥

इति सम्प्रार्थ्य परिक्रमणं कुर्यात् ।

ॐ कायेन वाचेत्यादिना कर्मेश्वरार्पणं कृत्वा ब्राह्मणं सम्पूज्य आमान्नदक्षिणां दद्यात् । आचम्याऽधोवस्त्रं क्षालयित्वा तिलकाक्षतधारणं ब्राह्मणसकाशादिति तर्पणप्रयोगः ।

* **अथ श्राद्धप्रयोगः**——तत्र श्राद्धकर्त्ता तीर्थनियतश्राद्धस्थाने आगत्य सामग्रीं सम्पाद्य दक्षिणाभिमुख उपविश्याऽचम्य ।

---

* **तीर्थश्राद्धविचारः—**

आसनं पिण्डदानं च पुनः प्रत्यवनेजनम् ।
अर्चनं दक्षिणां चान्नं दद्यात्तीर्थेष्वयं विधिः ॥

हेमाद्रौ—अर्घ्यमावाहनं चैव द्विजांगुष्ठनिवेशनम् ।
तृप्तिप्रश्नं च विकिरं तीर्थश्राद्धे विवर्जयेत् ॥
नावाहनं न दिग्बन्धो न दोषो दृष्टिसम्भवः ।
सकारुण्यं च कर्त्तव्यं तीर्थश्राद्धं विचक्षणैः ॥

अत्र श्राद्धीये देशेऽन्नादिद्रव्ये च काकश्वशूद्रादिभिर्दृष्टेऽपि न दोषः ॥

विश्वेदेवाः पूर्वमुखाः पितरः सौम्यदिङ्मुखाः ।
सामग्री दक्षिणे स्वस्य स्वयं स्याद्दक्षिणामुखः ॥

पाद्मे—तीर्थश्राद्धं प्रकुर्वीत पक्वान्नेन विशेषतः ।
आमान्नेन हिरण्येन कन्दमूलफलैरपि ॥

पिण्डद्रव्यहविः—

यवसक्तु कसंयाव पिण्याकगुडपायसैः ।
पिण्डान्साज्यक्षीरखण्डतिलक्षौद्रैश्चरेद्बुधः ॥

ॐ शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये ॥

ततः प्रादेशमात्रां चतुरस्रां बालुकावेदिकां निर्माय यद्वा तीर्थ-शिलायामेव दक्षिणाग्रकुशानास्तीर्य दीपं प्रज्वाल्य धूरिलोचनवैश्वदैविककुशं पूर्वाभिमुखं संस्थाप्य पितृमातामहकुशमुत्तराभिमुखं संस्थाप्य एतन्ते इति प्रतिष्ठां कुर्यात् । भूमौ चन्दनेन शंखचक्रे विलिख्य कुशपत्रद्वयेनासनम् आसने पात्रम् पात्रे पवित्रकम् ।

ॐ पवित्रेस्थो वैष्णव्यौ सवितुर्व्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः । जलम्—**ॐ शन्नोदेवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये शंय्योरभिस्रवन्तु नः ॥** यवान्—**ॐ यवोऽसि यव**

हेमाद्रौ प्रचेताः—

कृष्णमाषास्तिलाश्चैव श्रेष्ठाः स्युर्यवशालयः ।
महायवा व्रीहियवास्तथैव च मधूलिकाः ॥
कृष्णाः श्वेताश्च लोहाश्च ग्राह्याः स्युः श्राद्धकर्मणि ।
एकोद्दिष्टे बिल्वमानं पार्वणे बिल्वकोपमम् ।
तीर्थे धात्रीसमं श्राद्धे पुत्रः पिण्डं विनिर्वपेत् ॥

पिण्डव्याख्या वाचस्पतौ—अन्नादिमये पितृभ्यो देये गोलाकार-पदार्थे ।

कात्यायनः—कुर्याद्द्वादशदैवत्यं प्रेतपक्षे तु सर्वदा ।
तथा तीर्थे गयायां च एष धर्मः सनातनः ॥

अन्यः—महालये गयाश्राद्धे वृद्धौ चान्वष्टकासु च ।
ज्ञेयं द्वादशदैवत्यं तीर्थे प्रोष्ठे मघासु च ॥

याऽस्मद्द्वेषोयवयारातीः ॥ तिलान्—**ॐ तिलोऽसि सोमदैवत्यो गोसवो देवनिर्मितः । प्रत्नमद्भिः पृक्तः स्वधया पितॄँल्लोकान्प्रीणाहि नः स्वाहा ।**

गन्धपुष्पाक्षतादि तूष्णीं निक्षिपेत् ॐ वरुणाय नमः कर्म्मपात्रं सुसम्पन्नमस्तु तेन जलेनाऽत्मानं श्राद्धसामग्रीं च ॐ अपवित्रः पवित्रो वेति सम्प्रोक्ष्य प्राणानायम्य वैश्वदैविककर्मपात्रं तिलरहितं संस्थाप्य ।

अपसव्येन ॥ **ॐ सप्त व्याधा दशार्णेषु मृगाः कालंजिरे गिरौ चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे तेपि जाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः प्रस्थिता दीर्घमध्वानं यूयं किमवसीदथ** । इति पठित्वा । सव्येन—**ॐ देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च । नमः स्वाहायै स्वधायै नित्यमेव नमो नमः ।**

इतित्रिर्जपः ॥

प्रतिज्ञासंकल्पः—अद्येत्यादि० अमुकगोत्राणाम् अस्मत्पितृपितामहप्रपितामहानाम् अमुकामुकशर्मणाम् सपत्नीकानाम् वसुरुद्रादित्यस्वरूपाणाम् सपत्नीकानाम् तथा अमुकगोत्राणाम् अस्मन्मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहानाम् अमुकामुकशर्मणाम् सपत्नीकानाम् वसुरुद्रादित्यस्वरूपाणाम् तथा चास्मन्मातृपितृवंशजातानाम् अज्ञातनामधेयानामन्येषां च समस्तपितॄणां निरतिशयसानन्दविष्णुलोकावाप्तये अक्षय्यतृप्तिकामनया धूरिलोचनविश्वेदेवपूर्वकम् अमुकतीर्थप्राप्तिनिमित्तकं तीर्थश्राद्धं करिष्ये ।

ततो देवासनदानम्—अद्यामुकगोत्रास्मत्पित्रादित्रयश्राद्धसंबन्धिनां तथामुकगोत्रास्मन्मात्रादित्रयश्राद्धसम्बन्धिनां तथाऽमुकगोत्रास्मन्मातामहादित्रयश्राद्धसम्बन्धिनां धूरिलोचनसंज्ञकानां विश्वेषां देवानामिदमासनमस्तु ॥

पित्र्यासनदानम्—अपसव्येन तिलमोटकजलान्यादाय—अद्यामुकगोत्राणाम् अस्मत्पितृपितामहप्रपितामहानाम् अमुकामुकशर्मणाम् वसुरुद्रादित्यस्वरूपाणाम् सपत्नीकानाम् तीर्थश्राद्धे पिंडस्थाने इदमासनं ते स्वधा।

अद्यामुकगोत्राणाम् अस्मन्मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहानाम् अमुकामुकशर्मणाम् सपत्नीकानाम् वसुरुद्रादित्यस्वरूपाणाम् तीर्थश्राद्धे पिण्डस्थाने इदमासनं ते स्वधा ।

ततः सव्येन धूरिलोचनविश्वेषां देवानां पूजनम् — ॐ नमोस्त्वनन्तायेत्यादिगन्धादिभिर्वस्त्रनैवेद्यदक्षिणान्तं सम्पूज्याऽपसव्येन ॐ पितृभ्य इत्यादिना पितृमातॄणां ॐ नमो व इत्यादिना मातामहानां च पूजनं कुर्यात् ।

ततः ॐ अपहताऽअसुरा रक्षा ꣳ सि वेदिषदः।

इति वेदिकोपरि तिलान् विकीर्य—

अवनेजनदानम्—अद्यामुकगोत्राणाम् अस्मत्पितृपितामहप्रपितामहानाम् अमुकामुकशर्मणाम् वसुरुद्रादित्यस्वरूपाणाम् सपत्नीकानाम् तीर्थश्राद्धे पिण्डस्थानेऽवने निक्ष्व ते स्वधा ॥ इति

तिलमोटकसहितम् अवनेजनजलं पिण्डस्थाने दत्त्वा शेषजलं प्रत्यवनेजनार्थं संस्थाप्य ॥

अपसव्येन पिण्डदानम्-ततः कर्ता स्वपितॄन्स्मृत्वा तिलगुडयवपिष्टतण्डुलपिष्टादि पिण्डद्रव्येणामलकमितान्पिण्डान्निर्माय वेदिकायां प्रथमपंक्तौ मूले पितुः मध्ये पितामहस्याग्रे प्रपितामहस्य एवमन्येभ्योऽपि वामभागे दक्षिणाग्रकुशोपरि क्रमशः पिण्डान् * दद्यात् ॥

दक्षिणहस्ते मोटकतिलजलैः सह पिण्ड गृहीत्वा--अद्यामुकगोत्रास्मत्पितः अमुकशर्मन् वसुस्वरूपे अस्मिन् तीर्थश्राद्धे एष पिण्डो अमृतस्वरूपी मद्दत्तस्ते स्वधा। इति वेद्यां पिण्डं दद्यात्।

---

* हेमाद्रौ—उद्यतस्तु गयां गन्तुं श्राद्धं कृत्वा विधानतः।
विधाय कार्पटीवेषं ग्रामस्यापि प्रदक्षिणम् ॥
शमीपत्रप्रमाणेन पिण्डं दद्यात् गयाशिरे।
उद्धरेत्सप्त गोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम् ॥
फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम्।
आत्मानं तारयेद्यस्तु दशपूर्वान् दशापरान् ॥
पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रं क्रोशमेकं गयाशिरः।
यत्र यत्र स्मरिष्यामि पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥
तुलसी शर्करा क्षीरमाज्यमन्नं तथा मधु।
तिलाश्च शिवनिर्माल्यमष्टाङ्गः पिण्ड उच्यते ॥
शिवनिर्माल्यम्=गङ्गाजलम् ॥
याज्ञवल्क्यः—घृतेन दीपो दातव्यस्तिलतैलेन वा पुनः।
देवलः—निवृत्ते पितृमेधे तु दीपं प्रच्छाद्य पाणिना ॥
प्रच्छाद्यम्=निर्वाप्यम् ॥

अद्यामुकगोत्र अस्मत्पितामह अमुकशर्मन् रुद्रस्वरूप अस्मिन् तीर्थश्राद्धे एष पिण्डोऽमृतस्वरूपी मद्दत्तस्ते स्वधा ॥

अद्यामुकगोत्र अस्मत्प्रपितामह अमुकशर्मन् आदित्यस्वरूपे अस्मिन् तीर्थश्राद्धे एष पिण्डोऽमृतस्वरूपी मद्दत्तस्ते स्वधा ॥

अद्यामुकगोत्रे अस्मन्मातः अमुकि देवि गायत्रीस्वरूपे अस्मिन् तीर्थश्राद्धे एष पिण्डोऽमृतस्वरूपी मद्दत्तस्ते स्वधा ॥

अत्र सापत्नजनन्यै च ॥ इति मातृपिण्डं पितृपिण्डतो वामे धृत्वा—

अद्यामुकगोत्रे अस्मत् पितामहि अमुकि देवि सावित्रीस्वरूपे अस्मिन् तीर्थश्राद्धे एष पिण्डो अमृतस्वरूपी मद्दत्तस्ते स्वधा ॥

अद्यामुकगोत्रे अस्मत्प्रपितामहि अमुकि देवि सरस्वतीस्वरूपे अस्मिन् तीर्थश्राद्धे एष पिण्डो अमृतस्वरूपी मद्दत्तस्ते स्वधा ॥

अद्यामुकगोत्र अस्मन्मातामह अमुकशर्मन् वसुस्वरूप अस्मिन् तीर्थश्राद्धे एष पिण्डो अमृतस्वरूपी मद्दत्तस्ते स्वधा ॥

अद्यामुकगोत्र अस्मत्प्रमातामह अमुकशर्मन् रुद्रस्वरूप अस्मिन् तीर्थश्राद्धे एष पिण्डो अमृतस्वरूपी मद्दत्तस्ते स्वधा ॥

अद्यामुकगोत्र अस्मत् वृद्धप्रमातामह अमुकशर्मन् आदित्यस्वरूप अस्मिन् तीर्थश्राद्धे एष पिण्डो अमृतस्वरूपी मद्दत्तस्ते स्वधा ॥

अद्यामुकगोत्रे अस्मन्मातामहि अमुकि देवि गायत्रीस्वरूपे अस्मिन् तीर्थश्राद्धे एष पिण्डो अमृतस्वरूपी मद्दत्तस्ते स्वधा ॥

अद्यामुकगोत्रे अस्मत्प्रमातामहि अमुकि देवि सावित्रीस्वरूपे अस्मिन् तीर्थश्राद्धे एष पिण्डोऽमृतस्वरूपी मद्दत्तस्ते स्वधा ॥

अद्यामुकगोत्रे अस्मत् वृद्धप्रमातामहि अमुकि देवि सरस्वती-स्वरूपे अस्मिन् तीर्थश्राद्धे एष पिण्डो अमृतस्वरूपी मद्दत्तस्ते स्वधा ॥ ततो वेद्येकदेशे सापत्नमातुः, ज्येष्ठपितृव्यस्य, कनिष्ठपितृव्यस्य, ज्येष्ठभ्रातुः, कनिष्ठभ्रातुः, मातुलस्य, गुरोः,जामातुः शिष्यस्य, मित्रस्य, कन्यायाः, श्वशुरस्य, पितृस्वसुः, मातृस्वसुः भगिन्याः, पुत्रस्य, पत्न्याः, बान्धवानां च नामोच्चारणं कृत्वा एभ्यः पिण्डान् दद्यात् ।

अस्मत्कुले मृता ये च गतिर्येषां न विद्यते ।
आवाहयिष्ये तीर्थेऽस्मिन्यदाहूता अपि स्वयम् ॥
ये मे कुले लुप्तपिण्डाः पुत्रदारविवर्जिताः ।
क्रियालोपगताश्चैव जात्यन्धाः पङ्गवस्तथा ॥
विरूपा आमगर्भाश्च ज्ञाताज्ञाताः कुले मम ।
तेषां पिण्डो मया दत्तो ह्यक्षय्यमुपतिष्ठतु ।

इति पिण्डान्दत्त्वा पिण्डशेषमन्त्रं *ॐ लेपभागिनामयं भागोऽस्तु

---

*मात्स्ये—लेपभाजश्चतुर्थाद्याः पित्राद्याः पिण्डभागिनः ।
पिण्डदः सप्तमस्तेषां सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम् ॥
न भक्षयेत्पिण्डनैवेद्यं विकरान्नं न भक्षयेत् ।
प्रमादात् भक्षयेद्यस्तु स मूढो नरकं व्रजेत् ॥

इति पिण्डानां परितः प्रदक्षिणक्रमेण क्षिपेत् । कुशमूलेषु करं प्रोञ्छ्य ।

ततः प्रत्यवनेजनदानम्—

पूर्व संस्थापित अवनेजनपात्रस्थजलं दक्षिणकरे तिलमोटक-सहितं चादाय—

अद्यामुकगोत्र अस्मत्पितः अमुकशर्मन् वसुस्वरूप अस्मिन् तीर्थश्राद्धे * पिण्डे प्रत्यवनेजनं निक्ष्व ते स्वधा । इति पितृपिण्डोपरि सिञ्चेत् एवमन्येभ्योऽपि प्रत्यवनेजनं दद्यात् ॥ ततःपिण्डपूजनम्—ॐ पितृभ्यः स्वधायिभ्यः इत्यादिना ॐ पित्रादिभ्यो नमः इति नाममन्त्रेण वा प्रतिपिण्डं † गङ्गाजलचन्दनतिलाक्षतपुष्पतुलसीदल-

---

* निर्णयप्रदीपे—

घंटानिनादो हयसन्निधानं शंबूकशंखं कदलीदलं च ।
उन्मत्तजात्यर्कहयारिजानि श्राद्धस्य वैगुण्यकराण्यमूनि ॥

† कौर्मे—क्षीरं क्षीरविकारश्च पायसं शर्करा मधु ।
देयं श्राद्धेषु यत्नेन सर्वदा पितृतृप्तये ॥

याज्ञवल्क्यः—तुलसीं भृंगराजं च अपामार्गं शमीं तथा ।
पितृमूर्द्धनि यो दद्यात्स याति परमां गतिम् ॥
पितृमूर्द्धनि पिण्डोपरि इत्यर्थः ॥

आत्मबन्धुः—आत्मपितृष्वसुः पुत्राः आत्ममातृष्वसुः । सुताः आत्ममातुल-पुत्राश्च विज्ञेया ह्यात्मबान्धवाः ॥

पितृबन्धुः—पितुः पितृष्वसुः पुत्राः पितृमातृष्वसुः सुताः ।
पितुः मातुलपुत्राश्च विज्ञेयाः पितृबान्धवाः ॥

धूपदीपवस्त्रनैवेद्यदक्षिणादिभिः सम्पूज्य पुनः पिण्डवस्त्रोपरि पूजनं विधाय ।

ॐ पिता धर्मः पिता स्वर्गः पिता हि परमं तपः ।
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः ॥
आयुः पुत्रान् धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ।
प्रयच्छन्ति तथा राज्यं प्राप्नुयां पितृपूजनम् ॥

इत्यक्षतान्समर्प्य ॥ **सव्येन दक्षिणादानम्**—अद्यामुकगोत्रपित्रादित्रयमात्रादित्रयां तथामुकगोत्रमातामहादित्रयश्राद्धसंबन्धिन धूरिलोचनसंज्ञकानां विश्वेषांदेवानांप्रीतयेकृतैतद्वैश्वदैविकपूर्वकतीर्थप्राप्तिनिमित्तकश्राद्धकर्मणः सांगता।सिद्धयेइमांदक्षिणांब्राह्मणायदास्ये

अपसव्येन——अद्यामुकगोत्राणाम् अस्मत्पितृपितामहप्रपितामहानाम् अमुकामुकशर्मणाम् सपत्नीकानाम् वसुरुद्रादित्यस्वरूपा-

---

मातृबन्धुः—मातुः पितृष्वसुः पुत्रा मातुर्मातृष्वसुः सुताः ।
मातुर्मातुलपुत्राश्च विज्ञेया मातृबान्धवाः ॥

इति याज्ञवल्क्यस्मृतौ दायविभागे ॥

मरीचिः—अन्तर्मातामहान् कृत्वा मातॄणां यः प्रयच्छति ।
उदकं पिण्डदानं च नरकं स तु गच्छति ॥

अत्रिः—सिंहकर्कटयोर्मध्ये सर्वा नद्यो रजस्वलाः ।
न स्नानादीनि कर्माणि तासु कुर्वीत मानवः ॥
आदौ तु कर्कटे देवि महानद्यो रजस्वलाः ।
त्रिदिनं तु चतुर्थेऽह्नि शुद्धा स्युर्जाह्नवी सदा ॥

णाम् तथामुकगोत्राणाम् अस्मन्मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहानाम् अमुकामुकशर्मणाम् सपत्नीकानाम् वसुरुद्रादित्यस्वरूपाणाम् अमुकतीर्थप्राप्तिनिमित्तकश्राद्धकर्मणः सांगतासिद्धये इमां दक्षिणां ब्राह्मणाय दास्ये।

सव्येनान्नसंकल्पः—विश्वेदेवाग्रेऽन्नंसंस्थाप्यदक्षिणहस्तेन सजलयवं ऋजुकुशं गृहीत्वा वामकरेणान्नं स्पृशन् ॐ अद्यामुकगोत्रास्मत्पित्रादित्रयमातादित्रयश्राद्धसंबन्धिभ्यः तथामुकगोत्रास्मन्मातामहादित्रयश्राद्धसंबन्धिभ्यो धूरिलोचनसंज्ञकेभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्यः इदमन्नं सोपस्करं सोदकं निषिद्धवर्जममृतस्वरूपं ब्राह्मणस्य तृप्तिपर्याप्तं दीयमानं यथाविभागं वः स्वाहा ॥

अपसव्येन पितृमात्राद्यग्रे तथा मातामहाद्यग्रेऽन्नं संस्थाप्य। सतिलजलं मोटकमादाय वामकरेण अन्नं स्पृशन्——

ॐ अद्यामुकगोत्रेभ्योऽस्मत्पितृपितामहप्रपितामहेभ्योऽमुकामुकशर्मभ्यः सपत्नीकेभ्यो वसुरुद्रादित्यस्वरूपेभ्यो तथामुकगोत्रेभ्योऽस्मन्मातामहप्रमातामह वृद्धप्रमातामहेभ्योऽमुकामुकशर्मभ्यः सपत्नीकेभ्यो वसुरुद्रादित्यस्वरूपेभ्यो अस्मिन् तीर्थश्राद्धे इदमन्नं सोदकं सोपस्करं निषिद्धवर्जममृतस्वरूपं ब्राह्मणस्य तृप्तिपर्याप्तं दीयमानं यथाविभागं वः स्वधा ॥ इति पिण्डेषु मोटकं दद्यात् ॥

सव्येनाक्षय्योदकदानम्। यवऋजुकुशजलान्यादाय——

ॐ अद्यामुकगोत्रास्मत्पित्रादित्रयमात्रादित्रयतथामुकगोत्रास्मन्मातामहादित्रयश्राद्धसंबन्धिनां धूरिलोचनसंज्ञकानां विश्वेषां देवानाम्

अस्मिन् तीर्थप्राप्तिनिमित्तकश्राद्धे इदमन्नोदकादि यद्दत्तं * तदक्षय्यमस्तु ॥

अपसव्येन तिलमोदकमादायान्यादाय—ॐ अद्यामुकगोत्राणामस्मत्पितृपितामहप्रपितामहानाममुकामुकशर्मणां सपत्नीकानाम् वसुरुद्रादित्यस्वरूपाणां तथामुकगोत्राणाम् अस्मन्मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहानाममुकामुकशर्मणाम् सपत्नीकानां वसुरुद्रादित्यस्वरूपाणाम् तीर्थप्राप्तिनिमित्तकश्राद्धे इदमन्नोदकादि यद्दत्तं तदक्षय्यमस्तु । सव्येन प्रार्थयेत्—

ॐ गोत्रं नो वर्द्धताम् दातारो नोऽभिवर्द्धन्ताम् वेदाः सन्ततिरेव च । श्रद्धा च नो मा व्यगमद् बहु देयं च नोऽस्तु अन्नं च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि । याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म किञ्चन । एताः सत्या आशिषः सन्तु पितृप्रसादात् ॥ स्वतिलकम्—

सत्यानुष्ठानसम्पन्नाः सर्वदा यज्ञबुद्धयः ।
पितृमातृपराश्चैव सन्त्वस्मत्कुलजा नराः ॥

---

* वनानि गिरयो नद्यस्तीर्थान्यायतनानि च ।
देवखाताश्च गर्तश्च न स्वाम्यं तेषु विद्यते ॥

इति तीर्थे भूमौ मूल्यं न दद्यादिति निर्णयसिन्धौ ॥

प्रचेताः—सर्वत्रैव पितुः प्रोक्तः पिता तर्पणकर्मणि ।
पितुरक्षय्यकाले तु पित्रे संकल्पने तथा ॥

नारदः— अक्षय्यासनयोः षष्ठी द्वितीयावाहने तथा ।
अन्नदाने चतुर्थी स्याच्छेषाः संबुद्धयः स्मृताः ॥

5.9
७५८